उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—५ फरवरी—१९८६ अंक—२

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल, 'विवेक शिखा'॥

संपादक
डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक संपादक
शिशिर कुमार मल्लिक
श्याम किशोर

संपादकीय कार्यालय :
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	२५० रु०
षड् वार्षिक	१०० रु०
त्रैवार्षिक	५५ रु०
वार्षिक	२० रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

सरल होने पर सहज ही ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। मनुष्य अगर सरल हो तो उसे दिए गए उपदेश शीघ्र सफल होते हैं। जोती हुई जमीन में, जिसमें कंकड़-पत्थर न हों, बीज पड़ते ही पेड़ उग जाता है और वह शीघ्रता से बढ़कर फल भी देने लगता है।

(२)

सोने से नाना प्रकार के गहने बनाए जाते हैं। गहनों के नाम और आकार अलग-अलग होने पर भी वे सभी एक ही सोना हैं। इसी तरह, एक ही ईश्वर भिन्न-भिन्न देशों में, भिन्न-भिन्न नाम और रूप में पूजे जाते हैं। साधक की भावना के अनुसार उनकी विभिन्न भावों से पूजा हो सकती है—कोई पिता या माता के रूप में, कोई सखा या प्रेमास्पद के रूप में, कोई अन्तरात्मा प्राणधन के रूप में, तो कोई अपनी सन्तान के रूप में उनकी आराधना करता है। परन्तु इन सभी भावों के भीतर से उस एक ही ईश्वर की पूजा होती है।

(३)

घोड़े की आँखों पर दोनों ओर से अँधोटी लगा देने पर वह सीधे रास्ते चलता है। उसी भाँति, संसारी मनुष्य के मन की बहिर्मुखी वृत्तियों को विवेक-वैराग्यरूपी अँधोटी के द्वारा रोक देने पर ही वह कुमार्गों में न भटकते हुए सीधे ईश्वर के पथ पर अग्रसर हो सकता है।

(४)

भगवान् के घर की चाभी उल्टी दिशा में घूमनेवाली होती है। भगवान् के समीप पहुँचने के लिए तुम्हें संसार का सब कुछ त्याग करना होगा।

विवेकानन्द वन्दन

—श्री सारदा तनय
रामकृष्ण मठ, नागपुर

(१)

आओ आओ योगिराज आज एक बार।
निज शक्तिदायी अभयमन्त्र का करो प्रचार॥

सुप्त चित्त को जगाओ, तामस-जड़ता भगाओ।
करो दूर मोह भ्रांति घोर अंधकार॥

निज स्वरूप भूल जीव, सहत यातना अतीव।
आत्मज्ञान कर प्रदान हरो क्लेशभार॥

आओ आओ दीनानाथ वीर योगिवेश में,
मोहमग्न शोकभग्न दैन्यग्रस्त देश में।
विमल ज्ञानदृष्टि फेर करो जनोद्धार॥

(२)

जय योगीश्वर त्रिभुवनवंदन। भुवनजयी भुवनेश्वरि-नंदन॥

ध्यानमग्न तुम परम उदासी, नरऋषि आए बन जगवासी।

कृपा-समीरण ने उपजाया ब्रह्मजलधि में लीलास्पंदन॥

वीर विवेकी अमितशक्तिधर, तेजपुंज तनु, कोमल अंतर।

दयानिधे प्रभुलीला सहचर, हरो नाथ भवमाया बंधन॥

सम्पादकीय सम्बोधन

हे विधाता, माँगता हूँ एक मुट्ठी भोर !

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

वह रात बड़ी काली थी। चारों ओर घुप्प अंधकार। सन्नाटे को तोड़ती हुई ट्रेन काफी तेजी से आगे दौड़ती जा रही थी। डब्बे की बत्ती गायब थी। यात्री अपनी-अपनी बर्थ पर सो चुके थे। मैं खिड़की के किनारे बैठा बाहर देख रहा था। अंधकार के मोटे आँचल में सिमटी धरती के दूर-दूर तक कुछ नहीं दीख रहा था। सब कुछ स्तब्ध। सब कुछ खामोश। सब कुछ समाधिस्थ। हवा सायँ-सायँ बह रही थी। लगता था अंधकार के सागर में ज्वार उठ रहा हो। मैं किसी अदृश्य देवता की महालीला देख रहा था जैसे। प्रकृति कितनी विचित्र है। कहाँ गया दिन का प्रकाश पुंज! कहाँ गया भीड़ का कोलाहल! कहाँ खो गयी खेत-खलिहानों, नदियों, पहाड़ों, बाग-बगीचों की मन-मादन सुन्दरता! सब को इस निविड़ तिमिर ने लील लिया हो जैसे!

तभी किसी यात्री ने एक दर्द भरी सुरीली तान छेड़ी। बड़ा मर्म भेदी सुर था।

> जिंदगी दुःख से भरी है आँसुओं की भीड़
> मन-गगन में वेदना का घन घिरा गंभीर;
> हर तरफ छाया अँधेरा है अशेष अपार
> है पड़ी किश्ती भँवर में, उठ रहा है ज्वार;
> घोर तम के सर्प फन फैला रहे हर ओर
> हे विधाता, माँगता हूँ एक मुट्ठी भोर!

गायक की जिन्दगी थकी-थकी लग रही थी। वह कहीं से टूट चुका था। निराशा के नाग-दंश से वह कराह रहा था जैसे! उसके स्वर की टीस से मैं भी भींग गया था। करुणार्द्र हो गया था।

ऐसा नहीं था कि मैं उस गायक की निजी वेदना से ही भर गया था। उसकी पीड़ा तो छू ही रही थी। लेकिन मुझे लग रहा था, कितना ठीक यह गायक गा रहा है! आज हर किसी की जिन्दगी दुःख से भरी है। सर्वत्र आँसुओं की भीड़ है। सब के जीवन में वेदना के बादल छाये हैं। हर जगह अंधकार-ही-अंधकार है। सब की जीवन-नौका किसी भँवर में फँसकर डगमगा रही है। हर प्राण एक मुट्ठी रोशनी के लिए, अंजुरी भर सुख-शान्ति के आलोक के लिए तड़प रहा है। छटपटा रहा है। आह! कहाँ हो, हे प्रकाश के देवता! क्यों नहीं आलोक की वर्षा कर सब के जीवन का तिमिर-ताप हर लेते हो! मैं भीतर-ही-भीतर प्रार्थना की मुद्रा में आ गया था। गायक का स्वर चढ़ता जा रहा था—

> वे पराये हो गये, जो थे कभी अपने
> भरभरा कर ढह गये सब सुनहले सपने;
> कंठ में उठते नहीं हैं प्रार्थना के स्वर
> दूर तक दिखती नहीं कोई किरण भास्वर;
> एक हाहाकार उर में एक शोर अघोर
> हे विधाता, माँगता हूँ एक मुट्ठी भोर!

सचमुच सब के हृदय में एक भयंकर हाहाकार है, एक अशेष असीम चीख-पुकार है। मैं और भी गलने-पिघलने लगा।

मैं सोचने लगा, चूँकि हर व्यक्ति के जीवन में अंधकार है, शोर है, चीख-पुकार है, वेदना का दुर्वह भार है, इसलिए, प्रकारान्तर से आज हमारे पूरे देश में ही यह अँधकार फैल-पसर गया है। व्यक्ति जब टूटता है भीतर से, तब प्रकारान्तर से देश भी टूटता है भीतर से, कहीं गहरे से। व्यक्ति की चीख-पुकार राष्ट्र की चीख-पुकार बनकर उभर आती है।

किन्तु व्यक्ति क्यों टूटता है भीतर से? जब व्यक्ति के सपने टूटते हैं, उसकी आशाएँ, कल्पनाएँ और अपेक्षाएँ विफल हो जाती हैं, अधूरी रह जाती हैं तब वह टूटने लगता है। उसे सर्वत्र अंधकार ही अंधकार नजर आने लगता है। गायक ने ठीक ही गाया था—

> वे पराये हो गये जो थे कभी अपने
> भरभरा कर ढह गये सब सुनहले सपने
> कंठ में उठते नहीं हैं प्रार्थना के स्वर
> दूर तक दिखती नहीं कोई किरण भास्वर

जब अपने, अपने बेगाने होने लगेंगे तो व्यक्ति का मन टूटेगा ही। फिर उसके भीतर के कोमल मनोरम दिव्य भाव सूखने लग जायेंगे। उसके भीतर प्रार्थना के स्वर काँप-काँप कर रह जायेंगे। वे मुखरित नहीं होंगे। वह टूटेगा। निश्चय ही टूटेगा। और उसका टूटना राष्ट्र को तोड़ेगा।

क्या उपाय है व्यक्ति-मन को टूटने से बचाने का? अंधकार से उबार कर प्रकाश में प्रतिष्ठित करने का? उपाय है — उदारता। संकीर्णता का परित्याग। जब व्यक्ति मात्र निज के लिए सोचता है, वह संकीर्ण होता है। वह अल्प होता है। अल्पता में सुख नहीं है। संकीर्णता ही मनुष्य को तोड़ती है। संकीर्णता मृत्यु है — पीड़ा है — अंधकार है। उदारता में सुख है, जीवन है, प्रकाश है। हमें उदार होना ही होगा। हमें जाना होगा उदारता के मन्त्र दाता स्वामी विवेकानन्द की ओर — एक मुट्ठी भोर के लिए, व्यक्ति-मन और राष्ट्रीय-जीवन के प्रकाश के लिए। वे हमें पुकारते हैं — "आओ, हम सब प्रार्थना करें, 'हे कृपामयी ज्योति, पथ-प्रदर्शन करो' — और अंधकार में से एक किरण दिखाई देगी, पथ-प्रदर्शक कोई हाथ आगे बढ़ आयेगा। ...... जो दारिद्रय, पुरोहित-प्रपंच तथा प्रबलों के अत्याचारों से पीड़ित हैं, उन भारत के करोड़ों पददलितों के लिए प्रत्येक आदमी दिन-रात प्रार्थना करे। मैं धनवान और उच्च श्रेणी की अपेक्षा उन पीड़ितों को ही धर्म का उपदेश देना पसंद करता हूँ।" फिर वे करुणा से भरकर हमें उपदिष्ट करते हैं — "मैं न कोई तत्व-जिज्ञासु हूँ, न दार्शनिक हूँ और न सिद्ध पुरुष हूँ। मैं निर्धन हूँ और निर्धनों से प्रेम करता हूँ — बीस करोड़ नर-नारी जो सदा गरीबी और मूर्खता के दलदल में फँसे हैं, उनके लिए किसका हृदय रोता है? ...उसी को मैं महात्मा कहता हूँ जिसका हृदय गरीबों के लिए द्रवीभूत होता है। कौन उनके दुःख में दुःखी है? ...ये ही तुम्हारे ईश्वर हैं, ये ही तुम्हारे इष्ट बनें। निरंतर इन्हीं के लिए सोचो, इन्हीं के लिए काम करो, इन्हीं के लिए निरन्तर प्रार्थना करो — प्रभु तुम्हें मार्ग दिखायेगा।"

गायक गा रहा था —

कंठ में उठते नहीं हैं प्रार्थना के स्वर
दूर तक दिखती नहीं कोई किरण भास्वर।

मैं सोच रहा था — ठीक ही तो यह गा रहा है। नहीं उठेंगे प्रार्थना के स्वर तुम्हारे कंठ में, अगर तुम अपने निजी सुख-दुःख की सीमा में ही बंधे रहोगे। निजी क्षुद्र सुखों के लिए उठाया गया राग प्रार्थना नहीं है, भीख है। प्रार्थना के मूल में लोक-मंगल का भाव है। और जब तक प्रार्थना के स्वर नहीं जगते तब तक दूर — बहुत दूर तक आशा की, प्रसन्नता की, आनन्द की कोई भास्वर किरण दिखाई पड़ नहीं सकती है।

इसलिए प्रकाश चाहते हो तो प्रार्थना करो। प्रार्थना करना चाहते हो तो क्षुद्र अहं से, संकीर्ण 'स्व' से ऊपर उठो। उदार बनो। उदारता प्रेम-प्रीति की सहोदरा है। बिना प्रेम के तुम सुखी नहीं हो सकते। यह व्यक्ति-मन और राष्ट्र-जीवन दोनों के लिए आवश्यक है। स्वामीजी कहते हैं — "प्रेम ही मैदान जीतेगा। क्या तुम अपने भाई — मनुष्य जाति — को प्यार करते हो? ईश्वर को कहाँ ढूँढने चले हो — ये गरीब, दुःखी, दुर्बल मनुष्य क्या ईश्वर नहीं हैं? इन्हीं की पूजा पहले क्यों नहीं करते? गंगा तट पर कुआँ खोदने क्यों जाते हो? प्रेम की असाध्यसाधिनी शक्ति पर विश्वास करो।"

यह प्रेम अर्थात् त्याग और उदारता अर्थात् निःस्वार्थता ही हमें सुख-दुख के बन्धनों से मुक्त करते हैं — हमें सच्चा मनुष्य बनाते हैं — हमें बुद्ध में परिणत करते हैं। 'जब तुम सुख की कामना समाज के लिए त्याग सकोगे तब तुम भगवान बुद्ध बन जाओगे, तब तुम मुक्त हो जाओगे' — घोषणा है स्वामीजी की। बिना बुद्ध हुए, बिना मुक्त हुए न अपना हित है न राष्ट्र का मंगल। विश्व-मानव के पूर्ण रूपान्तरण के लिए इसी बुद्धत्व की अपेक्षा है। इसी प्रेम और उदारता की अपेक्षा है। "केवल वही व्यक्ति उत्तम रूप से कार्य कर सकता है, जो पूर्णतया निःस्वार्थी है, जिसे न तो धन की लालसा है, न कीर्ति की और न किसी अन्य वस्तु की ही। और

मनुष्य जब ऐसा करने में समर्थ हो जायेगा, तो वह भी एक बुद्ध बन जायगा, और उसके भीतर से ऐसी शक्ति प्रकट होगी जो संसार की अवस्था को संपूर्ण रूप से परिवर्तन कर सकती है।" ... यह उद्‌घोष है स्वामी विवेकानन्द का।

केवल निजी सुख की आकांक्षा एकांत स्वार्थ है।

केवल निजी सुख की कामना पाशविकता है।

एकान्त स्वार्थ और पशुत्व व्यक्ति को विनाश के गर्त में तेजी से ढकेल देते हैं। अतः हमें पशुत्व से ऊपर उठकर 'मनुष्यत्व' की गरिमा और महिमा से मंडित होना होगा। ऐसे ही सच्चे मनुष्यों से भारत का वर्तमान ज्योतित और भविष्य भास्वर होगा। इसी से स्वामीजी ने कहा था—'भारत को कम-से-कम अपने सहस्र तरुण मनुष्यों की बलि की आवश्यकता है; पर ध्यान दो—"मनुष्यों" की. "पशुओं" की नहीं।' स्वामीजी की सुदृढ़ धारणा थी कि—'भारत तभी जगेगा जब विशाल हृदयवाले सैकड़ों स्त्री-पुरुष भोग-विलास और सुख की सभी इच्छाओं को विसर्जितकर मन, वचन और शरीर से उन करोड़ों भारतीयों के कल्याण के लिए सचेष्ट होंगे जो दरिद्रता तथा मूर्खता के अगाध सागर में निरंतर नीचे डूबते जा रहे हैं।"

व्यक्ति का मन टूट रहा है इसीलिए राष्ट्र में विघटनकारी तत्त्व शिर उठा रहे हैं। बाहर की परिस्थितियाँ जब व्यक्ति के मन को तोड़ती हैं तब व्यक्ति देश और समुदाय में तोड़-फोड़, हत्या, लूट और हिंसा का हथकंडा अपना लेता है। किन्तु दोनों के मूल में है धार्मिक चेतना का अभाव। यदि भारत को तोड़ना है तो इसके मूल से धर्म-भावना को मिटा दो। यह देश स्वयं भरभरा कर गिर जायगा। यदि भारत को जोड़ना है, इसका पुनर्निर्माण करना है, इसका संवर्द्धन और शृंगार करना है तो इस राष्ट्ररूपी वट.वृक्ष के मूल को धर्म और अध्यात्म के ब्रह्म-वारि से, गंगाजल से सींचना ही होगा। कोई अन्य विकल्प ही नहीं है। स्वामीजी ने इस ओर बहुत पहले ही हमारा ध्यानाकर्षण किया था—"मैं अपने अनुभव के बल पर तुम से कहता हूँ कि जब तक तुम सच्चे अर्थों में धार्मिक नहीं होते, तब तक भारत का उद्धार होना असंभव है। भारतवर्ष का प्राण धर्म ही है, उसके जाने पर भारत नष्ट हो जायगा। अतः भारत में किसी प्रकार का सुधार या उन्नति की चेष्टा करने के पहले धर्म-प्रचार आवश्यक है। भारत को समाजवादी अथवा राजनीतिक विचारों से प्लावित करने के पहले आवश्यक है, उसमें आध्यात्मिक विचारों की बाढ़ ला दी जाय।'

गायक गाता जा रहा था। ट्रेन चलती जा रही थी। अंधकार कुछ और गहराता जा रहा था। और मैं सोचता जा रहा था—ओ गायक! तू जिस विधाता से एक मुट्ठी भोर मांग रहा है, वह विधाता कहीं दूर नहीं है। वह तेरे पास ही है—तेरा पिता, बन्धु, सखा, मित्र, पथ-प्रदर्शक सब कुछ। वह विधाता है—स्वामी विवेकानन्द। तू उनकी आँखों से देखने की दृष्टि पैदा कर, उनकी धड़कनों को सुनने का प्रयास कर, उनकी अमृत वाणी की झंकार को अपने मर्म में पैठने दे, उनकी राह पर चलने की चेष्टा कर और तू देखेगा एक किरण.बीज तेरे भीतर अंकुरित हो गया है। तेरे भीतर एक सूर्योदय हो गया है। अंधकार फट गया है। रात ढह गयी है। भोर अवतरित हो चुकी है।

मेरे मित्रो, व्यक्ति.मन को निराशा के गहन अंधकार से उबारने और राष्ट्र को एक ज्योति-कलश में रूपायित करने के लिए हमें स्वामी विवेकानन्द की राह पर चलना ही होगा। वे हमारे सबसे निकट के, सबसे अधिक विश्वस्त लोकनायक, आलोक पुरुष हैं। हम उनका साहित्य पढ़ें। उनके साहित्य का प्रचार-प्रसार करें और उनके संदेशों और आदर्शों के अनुसार अपने और राष्ट्र के जीवन का गठन करें, तभी हमारा, आपका और सबका मङ्गल है। स्वामीजी की १२४वीं जन्म तिथि के अवसर पर मैं उनसे प्रार्थना करता हूँ कि वे हम सब को अपनी राह पर चलने की प्रेरणा, शक्ति और सुबुद्धि प्रदान करें जिससे हम सबके जीवन और हमारे राष्ट्र के जीवन और संपूर्ण विश्व-मानव के जीवन में उतरा अंधकार छटे और आशा, उत्साह, आंतरिक मङ्गल, सौहृद्यता और दिव्य चेतना की नयी भोर उतरे। जय स्वामीजी!

गीता में मोक्ष-प्राप्ति के उपाय

स्वामी वेदान्तानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना।

श्रीमद्भगवद्गीता के प्रत्येक अध्याय की समाप्ति के बाद उस अध्याय के नाम के उल्लेख के पहले लिखा हुआ है—"श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे" इत्यादि। अर्थात् चार वेदों के अन्तर्गत ईशा, केन, कठ आदि उपनिषदों की भाँति गीता भी एक उपनिषद् है। दूसरी बात यह कि उपनिषदों में जिस प्रकार ब्रह्म के स्वरूप तथा ब्रह्मानुभूति के साधन का वर्णन हुआ है, गीता में भी वैसा ही किया गया है। गीता के प्रसिद्ध टीकाकार श्रीधर स्वामी ने ठीक ही कहा है कि सभी उपनिषदें गौ की भाँति हैं, श्रीकृष्ण उस गौ को दूहनेवाले हैं, और उस दोहन के फलस्वरूप गीता रूपी दुग्धामृत प्राप्त हुआ है। अतएव, गीता का 'ब्रह्म-विद्या' विशेषण सार्थक है। तीसरी बात यह कि गीता योगशास्त्र है। योग कहने से आजकल, हठयोग के विभिन्न ग्रंथों में वर्णित चौरासी प्रकार के आसनों, अनेक प्रकार के प्राणायामों तथा विभिन्न क्रियाओं का प्रचार अनेक व्यक्तियों द्वारा देश और विदेशों में किया जाता है। किन्तु गीता इन सब का प्रकाशक योगशास्त्र नहीं है। यहाँ तक कि गीता की शिक्षा महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रचारित चित्तवृत्ति निरोध स्वरूप योग के वर्णन में भी पर्यवसित नहीं है। गीता में प्राणायाम का उपदेश रहने पर भी इसमें कहीं भी किसी आसन के नाम का उल्लेख नहीं है। गीता के छठे अध्याय का नाम है—आत्म-संयम योग। इस अध्याय में चित्तवृत्ति निरोध रूप योग की साधना का वर्णन रहने पर भी उस साधना का फल कहा गया है—'ब्रह्मसंस्पर्शरूप अत्यन्त सुख की प्राप्ति' और इस अध्याय के अंतिम श्लोक में कहा गया है—जो योगी अपने मन-प्राणों को ईश्वर में समर्पण कर श्रद्धापूर्वक उनका भजन करते हैं, वे ही श्रेष्ठ योगी हैं।

गीता का प्रत्येक अध्याय एक-एक योग के नाम से अभिहित है। अध्यायों को इस प्रकार विशेषित करने का विशेष तात्पर्य है। भगवान श्रीकृष्ण ने अपने सम-कालीन भारतवर्ष में प्रचलित दार्शनिक सिद्धान्तों एवं साधनपथों का समन्वय गीता शास्त्र में किया है, यह किसी विशेष दार्शनिक मत का परिपोषक नहीं है। निष्काम कर्म, आत्मज्ञान, निर्गुण भक्ति एवं चित्त की एकाग्रता रूपी योग की सहायता से समन्वित जीवन-गठन का निर्देश प्रदान करना गीता का लक्ष्य है।

गीता के प्रथम अध्याय का नाम है—विषादयोग। मनुष्य जब तक विषयभोग में मग्न रहकर 'ठीक हूँ', ऐसा सोचता है, तब तक उसके हृदय में आत्मजिज्ञासा का उदय नहीं होता। किन्तु जब किसी प्रकार दारुण-दुःख-विपत्ति में पड़कर वह परित्राण का कोई उपाय ढूँढ़ नहीं पाता है, तब उसके हृदय में मानव-जीवन के प्रकृत उद्देश्य एवं उसकी प्राप्ति के साधन के विषय में जानने का आग्रह उत्पन्न होता है। इसी से विषाद भी एक प्रकार का योग है।

गीता के दूसरे अध्याय का नाम है—सांख्य योग। इस अध्याय में आत्मा के प्रकृत स्वरूप का वर्णन हुआ है। इस अध्याय के ७१वें श्लोक में कहा गया है—जो व्यक्ति आत्मा के स्वरूप का अनुभव होने के फलस्वरूप प्राप्त भोग्य विषयों में आसक्त नहीं होते, अप्राप्त विषयों को पाने की वासना जिनके हृदय में उत्पन्न नहीं होती, किसी वस्तु को जो 'यह मेरी है' इस प्रकार नहीं मानते एवं स्व को किसी कर्म का कर्त्ता मानकर अभिमान नहीं करते वे शान्ति अर्थात् मोक्ष-लाभ करते हैं। इस अध्याय के अंतिम श्लोक में साधक की इस अवस्था

को 'ब्राह्मी स्थिति' कहा गया है, और यह भी कहा गया है कि मृत्यु के एक क्षण पहले भी इस अवस्था को प्राप्त हुए व्यक्ति ब्रह्मनिर्वाण प्राप्त करते हैं।

गीता का चतुर्थ अध्याय ज्ञानयोग के नाम से अभिहित है। इस अध्याय के ३७वें श्लोक में कहा गया है कि निष्काम कर्मानुष्ठान के फलस्वरूप शुद्ध चित्त, विषय-वैराग्य सम्पन्न, गुरु एवं शास्त्र के उपदेश के प्रति श्रद्धापरायण तथा साधना के प्रति आग्रहशील साधक आत्मज्ञान प्राप्त करते हैं। ज्ञानलाभ होने पर साधक के लिए कोई करणीय कर्म अवशिष्ट नहीं रहता। वे शीघ्र ही परमशान्ति अर्थात् मोक्षलाभ करते हैं।

गीता के पंचम अध्याय का नाम है—संन्यासयोग। इस अध्याय के क्रमशः तीन श्लोकों (२४, २५ एवं २६वें) में ब्रह्मनिर्वाण लाभ के अधिकारी साधक के लक्षणों का वर्णन हुआ है। इन श्लोकों में कहा गया है कि सर्वतोभावेन कर्तृत्व के अभिमान से रहित जो साधक सम्पूर्ण मन से ईश्वर को विश्व ब्रह्माण्ड का अधिपति, जीव द्वारा अनुष्ठित समस्त कर्मों का फलभोक्ता एवं सभी प्राणियों का सहायक बन्धु समझते हैं, मैं कर्त्ता हूं, मैं किये गये कर्मों का फल-भोक्ता हूं, मैं अन्य प्राणियों का उपकार करनेवाला हूं, इस प्रकार का अभिमान जिनमें नहीं रहता, वे शान्ति अर्थात् मोक्ष प्राप्त करते हैं।

आठवें अध्याय के पन्द्रहवें श्लोक में कहा गया है कि श्रीभगवान् के उत्तम भक्त मोक्ष प्राप्त करते हैं, ईश्वर को प्राप्त करने के फलस्वरूप उन्हें पुनः जन्म ग्रहण करना तथा विविध सांसारिक दुःखों का भोग करना नहीं पड़ता है।

गीता के नवम् अध्याय का नाम है—राजविद्या राजगुह्य योग। इस अध्याय के अंतिम श्लोक में भगवद्-भजन के प्रकार एवं भजन के फलस्वरूप ईश्वरानुभूति और परमानन्दप्राप्ति की बात कही गयी है। इसमें कहा गया है कि जिन भक्तों के मन-प्राण ईश्वर में समर्पित हो गये हैं, जो सर्वदा ईश्वर की सेवा, पूजा, वन्दना में रत रहते हैं—इस प्रकार के निश्चययुक्त भक्त ईश्वर-लाभ करते हैं।

गीता के दसवें अध्याय का नाम है—विभूतियोग। इसके नौवें एवं दसवें श्लोक में ईश्वर-प्राप्ति के साधनों का वर्णन हुआ है। कहा गया है—जिन भक्तों के मन-प्राण ईश्वर में समर्पित हैं, वे अपने हृदय में ईश्वर के स्वरूप, लीला एवं गुण के विषय में विवेचन कर संतोष और आनन्द प्राप्त करते हैं। इस प्रकार सतत् युक्त एवं प्रीति पूर्वक भजन में निरत साधकों को ईश्वर उसी प्रकार की बुद्धि प्रदान करते हैं जिस बुद्धि के सहारे वे ईश्वर की प्राप्ति में समर्थ होते हैं।

गीता का ग्यारहवां अध्याय 'विश्वरूप दर्शन योग' के नाम से अभिहित है। इसके अंतिम श्लोक में ईश्वर-प्राप्ति के लिए आवश्यक साधनों का उल्लेख है। जो भक्त ईश्वर की प्रीति के सम्पादन के लिए समस्त कार्य करते हैं, जो केवल मात्र ईश्वर का अवलम्बन लेकर रहते हैं, जिनके हृदय से विषयासक्ति एवं विद्वेषभावना चली गयी है, वे ईश्वर-लाभ में समर्थ होते हैं।

गीता के बारहवें अध्याय का नाम है—भक्तियोग। इस अध्याय के ५वें और ६ठे श्लोक में कहा गया है कि ईश्वर के प्रति ऐकान्तिकी भक्ति ही संसार-सागर से उद्धार एवं मोक्ष-प्राप्ति का एकमात्र उपाय है। जो लोग सभी प्रकार के विषय-चिन्तनों का त्याग कर ईश्वर की उपासना में अपना मन लगाते हैं, केवल वे लोग ही ईश्वर की कृपा से मुक्ति प्राप्त करते हैं।

गीता का तेरहवां अध्याय 'क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योग' के नाम से अभिहित है। इस अध्याय के २७वें एवं २८वें श्लोकों में समदर्शन के फल का विवेचन हुआ है। इन श्लोकों में कहा गया है कि उत्पत्ति और विनाशशील स्थावर और जंगम सभी जीवों में एक ही ईश्वर समभाव से विराजमान हैं। विचित्र जीव-जगत् के बीच एक ईश्वर के प्रकाश के अनुभव के फलस्वरूप जिनके हृदय से भेद-भाव चला जाता है, वे मोक्ष-लाभ करते हैं।

गीता के चौदहवें अध्याय का नाम है—'गुणत्रय-विभाग योग'। इस अध्याय में सत्व, रज: एवं तमोगुण की क्रिया एवं इन तीन गुणों के प्रभाव से मुक्त गुणातीत साधक के लक्षण का विवेचन हुआ है। २६वें श्लोक में कहा गया है—जो व्यक्ति विषयान्तर चिन्ता से रहित होकर एकनिष्ठा भक्ति की सहायता से ईश्वर की सेवा करते है वे जीवन में होने वाले दुःखों के कारण स्वरूप तीनों गुणों के प्रभाव का अतिक्रमण कर मोक्ष लाभ करने में समर्थ होते हैं।

गीता के पन्द्रहवें अध्याय का नाम है—'पुरुषोत्तम योग'। इस अध्याय के अंतिम तीन श्लोकों का मर्म इस प्रकार है। दृश्यमान अथवा अनुभूत समस्त जड़ पदार्थों एवं चेतन जीवों के नियन्ता एक परम पुरुष हैं। भ्रम-ज्ञान से रहित जो व्यक्ति इन पुरुषोत्तम के यथार्थ स्वरूप से अवगत हुए हैं वे समस्त दैहिक क्रियाओं एवं मानसिक चिन्तनों के द्वारा इन्हीं पुरुषोत्तम की उपासना करते हैं तथा पुरुषोत्तम के स्वरूप की उपलब्धि के फलस्वरूप उनका मानव जन्म सार्थक होता है।

गीता का सोलहवाँ अध्याय 'दैवासुर सम्पद् विभाग योग' के नाम से अभिहित है। इस अध्याय के २२वें और २३वें श्लोकों में जो कहा गया है उसका सार अर्थ इस प्रकार है—काम, क्रोध और लोभ, इन तीन आसुरी प्रवृत्तियों के द्वारा अभिभूत मानव बार-बार जन्म-मरण के दुःख का अनुभव करता है। जो इन तीनों कुप्रवृत्तियों का दमन कर कल्याणकारी कर्मों में निरत रहते हैं, वे परागति अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति करते हैं।

गीता के अट्ठारहवें अध्याय का नाम है—'मोक्ष-योग'। इस अध्याय के ६२वें, ६५वें और ६६वें श्लोकों में सर्वतोभावेन ईश्वर की शरणागत होने का उपदेश दिया गया है। इनमें कहा गया है कि किसी प्रकार की चिन्तन भावना को मन में स्थान नहीं देकर जो मन-प्राणों को ईश्वर में समर्पण कर उनकी उपासना में रत रहेंगे वे भगवत्-प्रसाद से भगवान-लाभ करेंगे।

ऊपर गीता के विभिन्न अध्यायों से चुने हुए श्लोकों की जो विवेचना की गयी है उससे ज्ञात होता है कि गीता किसी एक विशेष दार्शनिक सिद्धान्त का ग्रंथ नहीं है। लीला के व्याज से नररूपधारी भगवान श्रीकृष्ण द्वारा उपदिष्ट गीता में किसी सम्प्रदाय विशेष की साधना-पद्धति का भी उपदेश नहीं हुआ है। इसमें जिन योगों या उपायों के सहारे मानव को जीवन के चरम लक्ष्य में उपनीत होने के लिए आह्वान किया गया है, उन सभी प्रकार के योगों के मूल में है मनोयोग। देहाभिमान एवं विषयासक्ति के प्रबल रहने पर किसी योग के सहारे लक्ष्य की ओर अग्रसर होना संभव नहीं होता। शरीर में 'अहं बोध' एवं इन्द्रिय ग्राह्य वस्तुओं में 'मेरा' का ज्ञान रहने पर मोह, भय एवं दुःखभोग से छुटकारा नहीं है।

और, इस जीवन में ही चरम लक्ष्य तक पहुँचने के लिए भगवान् आह्वान करते हैं। सर्वत्र समदर्शन में समर्थ व्यक्ति इस जीवन में ही जन्म-मरण के दुःख से छुटकारा पाते हैं तथा अपनी ब्रह्मस्वरूपता का अनुभव करते हैं (गीता ५/१९)। इस जीवन में जो काम-क्रोध जनित मानसिक विकारों का त्याग कर पाते हैं, वे व्यक्ति ही योगी हैं, वे ही सुखी हैं (गीता ५/२३)।

हिन्दू-मन्दिर—एक विहंगावलोकन

—स्वामी हर्षानन्द

अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद

प्रस्तावना

ईश्वर के बिना मानव जी नहीं सकता, रह नहीं सकता। यह सत्य मानव जाति के इतिहास से, मानव स्वभाव के अध्ययन से निकलता है। ईश्वर है; वह इस जगत् का सृष्टिकर्ता और नियंता है, उसके अनुग्रह से सुख-शांति तथा उसके क्रोध से दुःख-दारिद्र्य और कष्ट होते हैं—इस तरह का विश्वास सारे जगत् के सब जनों में किसी-न-किसी प्रकार से देखा जाता है।

अन्वर्थनाम

अगर ईश्वर है तो उस तक पहुँचने के लिए और उसकी प्रार्थना करने के लिए कोई उपाय होना ही चाहिए। वही है मंदिर। देश के राजा यदि हमारे गाँव आते हैं तो उनके रहने के लिए पड़ाव पड़ता है न? इसी तरह, सारे भूमंडल के चक्रवर्ती परमेश्वर हम पर अनुग्रह करने के लिए इस लोक में आये हैं। हमने भी उनके लिए एक प्रासाद बनाया है—ऐसी भावना मंदिर निर्माण के पीछे है।

मंदिर के अनेक नाम हैं। देवता का वासस्थान होने के कारण वह 'देवालय', 'देवतायतन' और 'देवस्थान' कहा जाता है। राजाधिराजा चक्रवर्ती का सुन्दर महल होने के कारण वह 'प्रासाद' है। देवलोक से मानव-लोक में उतरने के लिए यह मंदिर 'एरोप्लेन' की तरह उपयुक्त है; इसलिए वह विमान नाम से भी वर्णित हुआ है। और भवसागर से पार करता है, इसलिए उसका अन्य नाम भी है—'तीर्थ'।

मंदिर निर्माण का इतिहास

हमारे देश में सबसे पहले मंदिर कब बना? कैसा बना? किसने बनवाया? इस प्रश्न का समाधान बहुत कठिन है। प्रायशः वेदकालीन समाज में वे नहीं थे। मूर्तिपूजा और मंदिर निर्माण रामायण-महाभारत काल में प्रचलित हुआ होगा। पंडित लोग मानते हैं कि वैदिक यज्ञशाला ही कालक्रमेण भक्तिपथों के प्रभाव से मंदिर के रूप में परिणत हुए हैं।

प्राचीन काल में शायद मिट्टी से या काठ से मंदिर बनाये गये थे। इसलिए वे आज अस्तित्व में नहीं हैं। गुफा-मंदिर, पत्थर और ईंट से रचित मंदिर अर्वाचीन हैं। बृहद आकार में मंदिरों की रचना, अलंकारयुक्त शिल्पकला—ये और भी अर्वाचीन हैं।

इस विशाल भारतदेश में विभिन्न जगहों में हम मंदिर देख सकते हैं। वे भिन्न-भिन्न समय में निर्मित हुए तो भी उनमें एक तरह का रचना-साम्य है। कारण यह है कि वे सब कुछ मूलभूत तत्त्वों के अनुसार बनाये गये हैं। मन्दिर-निर्माण-विज्ञान एक क्रमबद्ध शास्त्र है। भारत में जितने मंदिर हैं वे सब-के-सब अपनी रचना शैली की दृष्टि से तीन वर्गों में बाँटे जा सकते हैं। प्रथम शैली है 'नागर'। यह पूर्व और उत्तर भारत में अधिकतर देखी जाती है। इसमें गर्भगृह के ऊपरवाला विमान बहुत ऊँचा और चाप के जैसा वक्र होता है। 'द्राविड़' नामक दूसरी शैली अधिकांशतया दक्षिण देश में दृष्ट है। इसमें विमान शिखर रहित 'पिरामिड' के समान हैं। 'वेसर' कही हुई तीसरी शैली नागर और द्राविड़ का मिश्रण है। यह विशेषतः कर्नाटक में देखी जाती है। इस शैली का प्रधान निर्माणकर्ता होयसल राजवंश है।

काल की सनक में पड़े हुए, तो भी अब तक बचे हुए मंदिरों में प्राचीनतम मंदिर सांची, भूमर, एहोले,

एलिफन्टा, एल्लोरा आदि जगहों में है। इनका काल लगभग ईस्वी सन् ६०० से ८०० तक है। आगामी हजार सालों में देवमंदिरों का निर्माण बहुत तेजी से हुआ। इनमें पल्लव पांड्य नामक वंश के राजाओं का, विजयनगर साम्राज्य के राजाओं का और कलिंग चोल होयसल वंश के राजाओं का श्रद्धापूर्ण योगदान बहुत उल्लेखनीय है। तमिलनाडु में कांचीपुर और मदुरै के बड़े-बड़े मंदिर, हंपि में विरूपाक्ष मंदिर, बेलूर हलेबीज का मन्दिर, भुवनेश्वर का लिंगराज मन्दिर, पुरी क्षेत्र का जगन्नाथ मन्दिर, कोणार्क का सूर्यमंदिर, खजुराहो के अनेक मन्दिर और गुजरात में मोढेरा का सूर्यमंदिर—ये सब उसके निदर्शन हैं। कर्नाटक के बेलूर हलेबीज के मन्दिर अपने अद्भुत शिल्पसौंदर्य के लिए सारी दुनिया में प्रसिद्ध हैं।

आग्नेय (दक्षिण-पूर्व) एशिया के कुछ देशों में विशेषतः जावा, बालि, कंपूचिया आदि में अनेक हिन्दू मन्दिर अभी भी अस्तित्व में हैं। उनका निर्माण काल ईस्वी सन् ८०० से १४०० तक है। कंपूचिया के अंगकोर मन्दिर आज संसार की दृष्टि अपनी तरफ आकर्षित कर रहे हैं। यह बात हमें अभिमान से भर देती है।

अर्थयुक्त रचना

मन्दिर की रचना के पीछे कोई सांकेतिक अर्थ है या नहीं? बिल्कुल है। आगम और वास्तुशिल्प शास्त्रों में इसका विवरण है। परमेश्वर विराट्पुरुष है। मन्दिर उसको सूचित करता है। गर्भमन्दिर उसका सिर है। महाद्वार उसका पाद। शुकनासी उसकी नाक। अंतराल उसकी ग्रीवा। प्राकारभित्ति, हाथ। यह व्याख्या लेटे हुए विराट् पुरुष की दृष्टि से है। अगर वह खड़ा है तो गर्भगृह उसका सिर होता है और शिखर, शिखा। बाकी सब अंग जमीन के अन्दर रहते हैं।

अथवा देवालय सारे ब्रह्मांड का भी प्रतीक है। चूंकि भूलोक से सत्यलोक तक के चौदह लोक विराट् पुरुष के विभिन्न अंग हैं और देवालय उसका प्रतीक है। इसलिए वह ब्रह्मांड का संकेत भी है।

और एक व्याख्या है। जिसके अनुसार देवस्थान मेरुपर्वत का प्रतीक है। मेरुपर्वत जगत् का धुरा है। सब लोक उसको आधार मानकर प्रतिष्ठित हैं।

अथवा एक अन्य व्याख्या है—देवालय इस प्रपंच का प्रतीक है या मानव देह का भी प्रतीक है। इस दूसरे पक्ष में देवालय के विविध भाग मानवदेह में स्थित योग-चक्रों के चिह्न हैं।

कभी-कभी देवतागंण या मंडल के आकार में भी मंदिर रचित होता है। तब वह इस जगत् का और सृष्टिकर्त्ता का संकेत होता है।

सारांश यह है कि मंदिर केवल ईंट-पत्थर का निर्जीव मकान नहीं, परन्तु वह, अर्थपूर्ण तत्त्वयुक्त रचना है।

निर्माण के पथ में

मंदिर बनाना अत्यंत पुण्यकार्य माना जाता है। इसलिए राजा-महाराजा और धन-दौलत वाले लोग मंदिर बनाने के लिए अपनी सम्पत्ति खर्च करने को उत्सुक रहते थे।

जो मन्दिर-निर्माण के लिए इच्छा करता है उसको 'यजमान' कहते हैं। यह यजमान प्रारंभ में 'आचार्य' का वरण करता है। और यह आचार्य सद्ब्राह्मण ही होना चाहिए। उसे आगमशास्त्र में तथा शिल्पशास्त्र में भी प्रवीण होना चाहिए। भवन-निर्माण का प्रायोगिक ज्ञान भी उसे होना चाहिए। सर्वोपरि उसका जीवन बहुत शुद्ध होना अत्यंत आवश्यक है।

आचार्यवरण के बाद यजमान द्वारा 'स्थपति' (वास्तु-शिल्पी) का वरण किया जाता है। वह ब्राह्मण नहीं, तो भी उसको सब विषय में आचार्य के साथ-साथ समान स्थान, मान एवं गौरव देना पड़ेगा। वह 'सूत्रग्राहि' (भूमि परिमापक), 'तक्षक' (बढ़ई तथा मूर्तिकार) और 'वर्धकि' (थवई) आदि के द्वारा मंदिर-निर्माण की जिम्मेदारी लेता है।

राय निश्चय होने पर यजमान धार्मिक विधि से 'संकल्प' करता है और मन्दिर का निर्माण पूर्ण होने तक शास्त्रवाक्य के अनुसार तपोयुक्त जीवन व्यतीत करता है।

निर्माण कार्य में सबसे पहला कदम है उचित जमीन का चुनाव। उसका परिष्कार करने के बाद जिस स्थान पर मन्दिर बनाना है उसपर वास्तुमंडल रचकर 'वास्तु-पुरुष' की पूजा करनी चाहिए। 'वास्तुपुरुष' तो आदर्श मकान का मूर्तिस्वरूप है और सब देवताओं का सामूहिक संकेत है। भक्तों का यह विश्वास है कि पूजा से संतुष्ट होकर वास्तुपुरुष अनुग्रह करता है जिससे निर्माण कार्य निर्विघ्न सम्पन्न होता है।

अनन्तर 'अंकुरार्पण' नामक क्रिया की जाती है। ताँबे के बर्तनों में अंकुरित विविध बीजों को रखकर सोमदेवता के सम्मुख स्थापना करना इस कर्म का मुख्य अंग है। इसके बाद वायव्य (उत्तर-पश्चिम) दिशा में शिलान्यास किया जाता है।

जिस जगह गर्भगृह बनना है और मूर्ति स्थापित की जानी है। उस जगह मिट्टी खोदकर आधारशिला, निधि-कुम्भ नामक कलश, कूर्म और पद्म (सभी पत्थर से निर्मित्त) स्थापित किये जाते हैं। उस पर एक ताँबे की नली और उसके ऊपर 'ब्रह्मशिला' नामक पट्टिया रखी जाती है। ठीक इस स्थान पर बाद में देव मूर्त्ति बैठायी जाती है।

गर्भ मंदिर के प्रस्तावित द्वार के पीछे एक निर्दिष्ट स्थान में 'गर्भन्यास' या 'गर्भाधान' कर्म किया जाता है। पच्चीस गढ़े वाले ताँबे के पात्र में शास्त्र में कही हुई कुछ चीजों को रखकर रात के एक मुहूर्त में वहाँ गाड़ना चाहिए। इससे भू-माता का अनुग्रह होता है।

मंदिर-निर्माण में कन्नी आदि जिन उपकरणों का उपयोग किया जाना है, उन सब की पूजा करनी चाहिए। ईंट, काष्ठ आदि वस्तुएँ नूतन होनी चाहिए। उनकी भी पूजा आवश्यक है।

इसके बाद मंदिर-निर्माण कार्य नक्शा और योजना के अनुसार तेजी से चलता है।

मंदिर के मुख्य अंग

एक मंदिर के आवश्यक अंग क्या हैं? प्रथम है गर्भगृह। अत्यंत प्रधान यह अंग समचतुर्भुज होता है। पुरोद्वार के अतिरिक्त इसमें और कोई छिद्र नहीं होना चाहिए। छत के ऊपर 'विमान' कहा हुआ प्रासाद शिखर होता है।

गर्भगृह के सामने 'शुकनासी' होता है। यह बहुत छोटा गलियारा है। इसको 'मुखमंडप' या 'अर्द्धमंडप' भी कहते हैं। इसके बाद विशाल मंडप आता है। 'नृत्यमंडप' या 'नाटमंदिर' या 'नवरंग' उसके अन्य नाम हैं। देवालय के उत्सव में बड़े-बड़े कार्यक्रम यथा धार्मिक प्रवचन, भजन, संकीर्तन, नाच, आदि, यहीं ही आयोजित होते हैं। नाटमंदिर के बाहर ध्वजस्तंभ प्रतिष्ठित होता है। ईश्वर तो राजाधिराजा, चक्रवर्तियों का भी चक्रवर्ती है। देवमंदिर उसका राजमहल है। इसलिए ध्वजस्तंभ रहना ही है न! उसके ऊपर मूल-देवता के वाहन के चित्र से अंकित पताका लगायी जाती है—शिवालय में वृषभ, विष्णु मंदिर में गरुड़, राम मंदिर में हनुमान, दुर्गा मंदिर में सिंह।

देवता के पदचिह्नों से युक्त बलि पीठ और दीपस्तंभ ये बाकी अंग हैं। बलिपीठ में परिवार देवताओं के लिए भी बलि या नैवेद्य रखा जाता है।

मंदिर परिसर में परिवार देवताओं के लिए छोटा मंदिर, रक्षा के लिए प्राकार, यज्ञशाला, पाकशाला, उत्सवमूर्ति के लिए कमरा, रथ के लिए ओसारा, पुष्करिणी या तालाब, फूल के बाग, गोदाम इत्यादि अन्य भाग भी होते हैं। (क्रमशः)

मानव का वास्तविक स्वरूप

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम
वाराणसी

भारत सरकार बधाई की पात्र है कि उसने १२ जनवरी—स्वामी विवेकानन्द के जन्मदिन—को राष्ट्रीय युवा दिवस के रूप में घोषित एवं स्वीकृत कर भारत के युवकों के समक्ष स्वामी विवेकानन्द को उनके आदर्श के रूप में स्थापित किया है। इस अवसर पर सारे भारत में सभाओं एवं समारोहों, भाषणों एवं लेखों, आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के माध्यम से स्वामी विवेकानन्द की जीवनी एवं उपदेशों का प्रचार एवं प्रसार हुआ है। स्वामीजी के संदेश के राष्ट्रनिर्माण, समाज-सुधार एवं चरित्र-निर्माणकारी पक्ष पर विशेष बल दिया जा रहा है। ये सारे सन्देश वस्तुतः स्वामीजी के मूलभूत आध्यात्मिक सन्देश के ही विभिन्न पहलू हैं। स्वामीजी के राष्ट्रोत्थान विषयक उपदेशों की महानता एवं उनकी वर्तमान काल में प्रासंगिकता को स्वीकार करते हुए ऐसे बहुत कम व्यक्ति ही हैं जिन्होंने उनके मौलिक आध्यात्मिक सन्देश की ओर दृष्टिपात किया है, या उसे गहराई से समझना चाहा है, लेकिन स्वामीजी का आध्यात्मिक संदेश उनके राष्ट्र के प्रति आह्वान से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है, तथा जिस प्रकार स्वाधीनता के ३० वर्ष बाद देर से ही सही, राष्ट्र ने उनके राष्ट्रोत्थान के सिद्धान्तों को स्वीकार किया है, उसी तरह कभी-न-कभी हमें उनके मूलभूत आध्यात्मिक दर्शन को भी स्वीकार करना होगा।

स्वामी विवेकानन्द का सन्देश

स्वामी विवेकानन्द ने स्वयं कहा है : "मेरा सन्देश कुछ ही शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है, वह है, मानव जाति को उसके देवत्व की शिक्षा देना तथा यह बताना कि उसे जीवन के प्रत्येक स्तर पर किस प्रकार अभिव्यक्त किया जाय" इस संक्षिप्त सन्देश का विस्तार हम 'विवेकानन्द साहित्य' के दस खण्डों में तथा इसकी व्यावहारिक अभिव्यक्ति स्वयं उनके जीवन में पाते हैं। इस सन्देश के दो भाग हैं। प्रथम, मानव को देवत्व की शिक्षा देना तथा द्वितीय उसकी अभिव्यक्ति के उपाय बताना। प्रथम पक्ष सैद्धान्तिक है, द्वितीय व्यावहारिक। राष्ट्र निर्माण, समाज विकास चरित्र निर्माण आदि इस सन्देश के उत्तरार्ध से सम्बन्धित हैं। लेकिन पूर्वार्ध के सैद्धान्तिक पक्ष को समझे बिना हम उसके दूसरे व्यावहारिक पक्ष के महत्त्व को हृदयंगम नहीं कर पायेंगे। मानव के देवत्व की भूमिका के रूप में पाश्चात्य चिन्तकों के मानव के स्वरूप विषयक विचार जानना आवश्यक है।

पाश्चात्य चिन्तकों के अनुसार मानव का स्वरूप—

प्राणिशास्त्र (Biology) के अनुसार मानव का जातिगत नाम Homo Sapiens है। वह एक ऐसा पशु विशेष है जिसमें Neo-Cerebrum नामक मस्तिष्क का वह भाग जो बुद्धि तथा आत्म-चेतना से सम्बन्धित है, अन्य जानवरों से अधिक विकसित है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह मानव अन्य पशुओं की अपेक्षा स्वचालित क्रियाओं अथवा Instincts द्वारा सबसे कम मात्रा में परिचालित होता है। प्राणिशास्त्र के इस सिद्धान्त को कि मानव एक 'पशु' विशेष है, लगभग सभी पाश्चात्य मनीषियों ने स्वीकार किया है, तथा वे, अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार इस पशु की अन्य पशुओं से विशेषता दिखाने का प्रयत्न करते

हैं। पुरातन पाश्चात्य दार्शनिक एरिस्टॉटल, मानव में राजनैतिक चिन्तन की क्षमता होने के कारण उसे 'Political Animal' या, 'राजनैतिक पशु' कहते हैं। अमेरिकन विचारक बेन्जामिन फ्रैंकलिन के अनुसार मानव यंत्रादि का निर्माण करने में समर्थ होने के कारण Tool-making Animal है।

पाश्चात्य मनीषीगण मानव को शरीर एवं मन का एक संघात मात्र मानते हैं। इन्हें वे क्रमशः सोमा (Soma) तथा साईकी (Psyche) कहते हैं, जो एक दूसरे से परस्पर सम्बन्धित हैं तथा एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। कुछ लोग मन को प्राधान्य देते हैं, तो अन्य दूसरे शरीर को अधिक महत्व देते हैं। आधुनिक भौतिकवादियों विशेषकर चिकित्साशास्त्र के विद्वानों (Medical Materialists) मानव को आर० एन० ए० तथा डी० एन० ए० (RNA, DNA) नामक रासायनिक परमाणुओं एवं अणुओं से निर्मित एक अत्यन्त पेचीदी मशीन मानते हैं तथा मानव की समस्त शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं को चुम्बकीय तथा विद्युतीय तरंगों एवं रासायनिक परिवर्तनों का परिणाम ही समझते हैं। उनके मतानुसार मानव के मन में उठ रहे शुभाशुभ विचार तथा भावनाएँ मस्तिष्क से उसी तरह पैदा होती हैं जिस तरह शरीर की विभिन्न ग्रंथियों से रस पैदा होते है।

आधुनिक विश्व की विचारधारा को अत्यधिक प्रभावित करनेवाले दार्शनिक-मनोवैज्ञानिक-चिकित्सक फ्रायड ने भौतिकवादियों के उपर्युक्त सिद्धान्त को स्वीकार कर उसके आधार पर अपना मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। मानव शरीर-क्रियाओं द्वारा परिचालित एक यंत्र है, (Physiologically driven Homme Machine) जिसकी शारीरिक आवश्यकताएँ, विशेषकर यौन सुख की, पूर्ण होनी चाहिए। मानव एक कामुक पशु (Sexual animal) है जो काम एवं आत्मसंरक्षण की प्रमुख प्रवृत्तियों द्वारा परिचालित होता है। अगर उसकी कामवृत्ति को विकसित एवं संतुष्ट नहीं किया जाय तो मानव मन में विकृतियाँ (Complexes) पैदा हो जाते हैं, यह फ्रायड का मत है। अतः उनके मनोविश्लेपण का लक्ष्य ऐसे 'स्वस्थ' मानव का विकास करना है, तथा तदनुरूप समाज का गठन करना है, जो यौन प्रेरणाओं का दमन न करे।

विख्यात समाज-शास्त्री कार्ल मार्क्स ने भी मानव के स्वरूप को समझने में अपना विशेष योगदान किया है। उनके अनुसार मानव एक 'सामाजिक पशु' है। लेकिन अन्य पशुओं से उसमें यह विशेषता है कि जहाँ पशु अपने को अपनी क्रियाओं से भिन्न नहीं जान सकता वहीं मानव अपने को अपनी क्रियाओं से भिन्न जान सकता है। इसे वे 'स्वाधीन, चेतन क्रियाशीलता' (Free Conscious activity) की संज्ञा देते हैं। मानव को परिचालित करने वाले कुछ स्थायी हेतु आहार तथा मैथुन शारीरिक आवश्यकताओं पर निर्भर करते हैं। लेकिन इसके अतिरिक्त सामाजिक प्रभाव द्वारा निर्मित ईर्ष्या, लोभादि सापेक्ष कारणों द्वारा भी परिचालित होता है। वह अपनी सभी इन्द्रियों द्वारा उनके विषयों को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। मार्क्स के अनुसार मानव तभी तक मानव कहला सकता हैं, जब तक वह सक्रिय रूप से अन्य मानवों प्रकृति तथा जगत् के साथ संपर्क स्थापित करने का प्रयत्न करता है। इसके अभाव में वह पशुतुल्य या रोगी मानव हो जाता है। इसके साथ ही मार्क्स आर्थिक हेतु को अपने सिद्धान्त में विशेष महत्व देते हैं।

भारतीय दर्शन के अनुसार मानव का स्वरूप

भारतीय मनीषियों ने मानव की परिभाषा एवं पशु से विशेषत्व स्पष्ट स्वरूप से प्रकट किया हैं।

आहार-निद्रा भय-मैथुनञ्च समानमेतत्पशुभिर्नराणाम्
धर्मोहि तेषामधिको विशेषो धर्मस्य हीना: पशुभिः समानाः

अर्थात् आहार, निद्रा भय और मैथुन मानव एवं पशु में समान रूप से विद्यमान हैं। मानव में धर्म विशेष हैं। अगर धर्म न हो तो मानव पशु के तुल्य ही है। ये धर्म दो प्रकार के कहे गये हैं। शंकराचार्य अपने गीता भाष्य में कहते हैं। "द्विविधो हि वेदोक्तो धर्मः प्रवृत्ति लक्षणः निवृत्ति लक्षणश्च।" वर्ण तथा आश्रम के शास्त्रोक्त विधि एवं निषेधों का पालन करते हुए अर्थ एवं काम की पूर्ति का प्रयत्न करना प्रवृत्ति धर्म कहलाता हैं। एवं विधि-निषेधों का अतिक्रमण कर परम-पुरुषार्थ मोक्ष के लिए प्रयत्न करना निवृत्ति-धर्म कहलाता है। मोक्ष का यह भारतीय सिद्धान्त एक अन्य दार्शनिक सिद्धान्त पर

आधारित है, जिसके अनुसार प्रत्येक मानव, यही नहीं, प्रत्येक प्राणी का वास्तविक रूप से एक नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा है, जो देह और मन से भिन्न है। स्वामी विवेकानन्द इस आत्मा को 'वास्तविक मानव' तथा देह-मन के संघात को 'प्रातिभासिक मानव' की संज्ञा देते हैं। इन दोनों का सम्बन्ध कठोपनिषद् में एक रथ के रूपक की सहायता से बहुत सुन्दर ढंग से समझाया गया है।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयां स्तेषु गोचरान।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥

अर्थात् आत्मा को रथी तथा शरीर को रथ जानो। बुद्धि सारथी है, मन लगाम तथा इन्द्रियाँ इस रथ के घोड़े हैं जो विषय रूपी मार्ग पर विचरण करते हैं। आत्मा, इन्द्रिय एवं मन को संयुक्त रूप से मनीषी गण भोक्ता कहते हैं।

श्रीरामकृष्ण के अनुसार जिसे अपने चैतन्य स्वरूप का ज्ञान हो गया है वही मनुष्य या "मान-हुँश" है। इसी संदर्भ में स्वामी विवेकानन्द का कथन है कि मानव तभी तक मानव है, जब तक वह अन्तः प्रकृति तथा वहिः प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के लिए सघर्ष करता है।

मानव सम्बन्धी मान्यताओं का सारांश—

उपर्युक्त कथन से यह बात स्पष्ट हो जायगी कि मानव के स्वरूप उसको परिचालित करने वाली प्रेरणाएँ एवं उसके चरम लक्ष्य सम्बन्धी पश्चात्य एवं भारतीय मान्यताओं में महत्त्वपूर्ण एवं मौलिक अन्तर हैं।

पाश्चात्य विचारकों के अनुसार मानव एक पशु-विशेष अथवा एक यंत्र एवं देह-मन का संघात मात्र है। वह आहार, निद्रा, मैथुन एवं आत्मसंरक्षण की शरीरिक आवश्यकताओं एवं स्वचालित प्रेरणाओं (Instincts) द्वारा परिचालित होता है। इसके अतिरिक्त अर्थ संग्रह एवं समाज के साथ सक्रिय सम्बन्ध स्थापित करना भी उसकी विशिष्ट प्रेरणाएँ हैं जो मार्क्स के अनुसार मानव को पशु से श्रेष्ठ बनाती हैं। फ्रायड के अनुसार मानव का पूर्ण अकुंठित यौन-विकास होने पर वह स्वस्थ अथवा पूर्ण मानव कहला सकता है, तथा यही उनके मनोविज्ञान एवं उसपर आधारित सामाजिक व्यवस्था का लक्ष्य है। मार्क्स मानव की मूलभूत शारीरिक आवश्यकताओं, आहार एवं मैथुन की तृप्ति के महत्व को स्वीकार करने के साथ ही मानव के समाज के साथ सक्रिय सम्बन्ध स्थापन को समाज व्यवस्था का लक्ष्य बताते हैं।

भारतीय दर्शन के अनुसार मानव का वास्तविक स्वरूप सत्-चित-आनन्द आत्मा है तथा देह एवं मन इससे भिन्न लेकिन सम्बन्धित प्रातिभासिक मानव हैं। प्रत्येक आत्मा स्वरूपतः पूर्ण अथवा ब्रह्म स्वरूप है तथा यही पूर्णत्व निरंतर अभिव्यक्त होने का प्रयत्न कर रहा है। भारतीय दर्शन चार पुरुषार्थों को स्वीकार करता है, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। जबतक मानव सामाजिक नियमों की उपेक्षा कर विधि-निषेधों को माने विना स्वेच्छा पूर्वक काम एवं अर्थ प्राप्ति का प्रयत्न करता रहता है, तब तक वह पशु-तुल्य ही बना रहता है। लेकिन सामाजिक विधि-निषेध रूप नियंत्रणों को स्वीकार कर उनके अनुसार अर्थ व काम के उपभोग में प्रवृत्त होने पर वह मानव के स्तर पर आरोहण करता है, तथा इनको भी त्याग कर जब वह मोक्ष कामी हो अंत में अपने स्वरूप को पहचानता है, तब वह देव कहलाता है। इस अन्तर्निहित देवत्व—पूर्णज्ञान, पूर्णआनन्द तथा पूर्ण शक्ति की अभिव्यक्ति ही भारतीय दर्शन के अनुसार जीवन का लक्ष्य है। मानव के इस दिव्य स्वरूप तथा उसकी पूर्णता की अभिव्यक्ति की संभावनाओं का उपदेश देना ही स्वामी विवेकानन्द का जीवन व्रत था।

मानव के स्वरूप के ज्ञान का महत्व

मानव के देवत्व के उपदेश को स्वामी विवेकानन्द द्वारा अपने सन्देश में प्राधान्य प्रदान करने का कारण यह था कि हमारा जीवन तथा आचरण हमारी अपनी सम्बन्धी मान्यता पर निर्भर करता है। यदि हम अपने को अपनी शारीरिक एवं मानसिक आवश्यकताओं एवं वासनाओं द्वारा परिचालित पशु समझेंगे तो सदा उसी तरह का जीवन यापन करते रहेंगे। यदि हम स्वयं को एक सामाजिक प्राणी समझेंगे, तो हमारा व्यवहार समाज के साथ सम्बन्ध स्थापित करने तक ही सीमित रहेगा।

लेकिन यदि हम अपने को नित्य, शुद्ध, बुद्ध, चैतन्य आत्मा मानेंगे तो हम तदनुरूप व्यवहार करेंगे। इस बात को समझाने के लिए स्वामी विवेकानन्द भेड़ों के झुण्ड के साथ पले एक शेर-शावक का उदाहरण देते थे।

एक बार एक शेरनी ने भेड़ों के एक झुण्ड पर आक्रमण किया। वह गर्भवती थी, और दुर्भाग्य से कूदने के आघात से उसकी मृत्यु हो गयी, लेकिन मृत्यु के ठीक पहले उसने एक शेर-शावक को जन्म दिया। यह शावक भेड़ों के झुण्ड में ही पलने तथा बड़ा होने लगा। वह भेड़ों की ही तरह घास खाता, मिमियाता तथा उन्हीं की तरह भयभीत हो कर भागता था। कुछ दिनों में यह शेर-शावक एक बड़ा शेर हो गया लेकिन उसका व्यवहार भेड़ सा ही बना रहा। एक दिन इस झुण्ड पर एक दूसरे शेर ने आक्रमण किया। वह यह देख कर दंग रह गया कि भेड़ों के झुण्ड में एक शेर भी है जो उन्हीं की तरह डर कर भाग रहा है। मौका पाकर जंगल के नवागन्तुक शेर अपने को भेड़ समझ रहे शेर को जबरदस्ती पकड़ कर जंगल में ले गया। उसे नदी के किनारे ले जा कर जंगली शेर ने कहा कि वह भेड़ नहीं शेर है। पानी में उसके चेहरे की परछाईं की अपने चेहरे से समानता दिखा कर उसने शेर-शावक के भ्रम को दूर करने का प्रयत्न किया। उसके मुँह में मांस का टुकड़ा डाल कर उसे चखने को कहा और शेर की तरह दहाड़ना सिखाया। अन्त में शेर-शावक अपने भेड़ होने के भ्रम को त्याग कर बड़े शेर के साथ जंगल में चला गया। उसका भय तथा भेड़ सदृश व्यवहार भी परिवर्तित हो गया।

इस संदर्भ में मुझे एक घटना याद हो आयी। मेरे मित्र के दो छोटे पुत्र जिनका नाम विवेक और शिरीश था, एक दिन खेल रहे थे। सारा परिवार श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द का भक्त था। अतः ये बालक एक दूसरे के नाम के पीछे 'आनन्द' जोड़ कर एक दूसरे को पुकार रहे थे, तथा स्वयं को संन्यासी मान कर आनन्द मना रहे थे। अचानक छोटा भाई शिरीश किसी कारण रोने लगा। विवेक कुछ आश्चर्यान्वित हो माँ के पास जा कर बोला, "माँ शिरीशानन्द कभी रो सकता है?" मानो वह बालक यह कहना चाहता है कि जबतक उसका भाई शिरीश नामक सामान्य बालक था, तबतक तो भले ही रोये, पर 'आनन्द' नाम संयुक्त संन्यासी हो गया है—अब क्या उसे रोना शोभा देता है? यही बात भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कही थी।

"क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते। 'यह क्लीवता, दुर्बलता तुझे शोभा नहीं देती, क्योंकि तू तो नित्य शुद्ध मुक्त आत्म स्वरूप है। यही बात स्वामी विवेकानन्द ने भारतवासियों को तथा पाश्चात्य देशवासियों को विभिन्न प्रकार से कही थी। सदियों की दासता की बेड़ियों में जकड़े जो भारतवासी उनपर शासन करनेवाली जाति की ठोकरें खा-खाकर अपना स्वरूप भूल बैठे थे—मानो भूल गये थे कि वे मनुष्य भी हैं, तथा यही समझने लगे थे कि गुलामी करना तथा ठोकर खाना ही हमारा जीवन है, ऐसे भारतवासियों को स्वामीजी ने उनकी पुरातन परंपरा का स्मरण दिलाते हुए ऋषियों की सन्तान कहकर पुकारा। भोग को ही अपना सर्वस्व मानने वाले पाश्चात्य देशवासियों को उन्होंने 'अमृतस्य पुत्राः' कह कर सम्बोधित किया—यह याद दिलाने के लिए कि भोग ही जीवन का सर्वस्व नहीं है, तथा यह कि वे अमरत्व के अधिकारी, आनन्दस्वरूप आत्मा हैं।

देवत्व के उपदेश की समस्याएँ

लेकिन आत्मा के स्वरूप का उपदेश देना एवं उसको ठीक-ठीक ग्रहण कर पाना इतना आसान नहीं है। यदि कोई व्यक्ति हमें यह कहे कि हम दिव्य हैं, ब्रह्म हैं या ईश्वर स्वरूप हैं तो हम यही समझेंगे कि वह व्यक्ति प्रलाप कर रहा है। इसीलिये उपनिषदों में कहा गया है:

श्रवणायापि बहुभियो न लभ्यः
शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा
आश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः॥

अर्थात् यह (आत्म तत्व) बहुत से लोगों को तो सुनने को भी नहीं मिलता। जो सुनते हैं उनमें से भी बहुत से उसे जान नहीं पाते। (क्योंकि) इस तत्व का ज्ञाता कोई तथा उसे लाभ करने वाले दोनों व्यक्ति आश्चर्यमय होते हैं। ऐसे विरले आश्चर्यमय व्यक्ति द्वारा कुशल प्रकार से शिक्षा दिये जाने पर ही इस तत्व का ज्ञान होता है। यह

समस्या सामान्य जन के लिए तो क्या, श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द जैसे महापुरुषों के साथ भी परिलक्षित होती है। उन्हीं की मुलाकात एवं वार्तालाप के रोचक वृत्तान्त से इसे अच्छी तरह समझा जा सकता है।

दक्षिणेश्वर मन्दिर में सर्वप्रथम श्रीरामकृष्ण व स्वामी विवेकानन्द (उस समय नरेन्द्रनाथ दत्त) की पहली भेंट के समय श्रीरामकृष्ण स्वामीजी को एकान्त में ले जाकर हाथ जोड़ कर कहने लगे कि ये नर ऋषि हैं, जो जगत हिताय पृथिवी पर अवतरित हो गये। यह बात सुनकर स्वामी जी अचंभित हो गये तथा मन-ही-मन सोचने लगे कि मैं तो विश्वनाथ दत्त का पुत्र नरेन्द्रनाथ दत्त हूँ, और ये सन्त मुझे नर-ऋषि का अवतार कहते हैं। ये सन्त होते हुए भी थोड़े से असन्तुलित मस्तिष्क के हैं, इसीलिए ऐसी बहकी बातें कर रहे हैं। उस दिन तो वे कुछ समय वार्तालाप कर लौट गये। उसके बाद जब वे पुनः दक्षिणेश्वर गये तो श्रीरामकृष्ण ने अचानक उन्हें स्पर्श कर दिया। उस दैवी, शक्तिशाली स्पर्श के फलस्वरूप स्वामीजी के सामने से सारा जगत् विलीन होने लगा, यहाँ तक कि उनकी स्वयं की देह, मन तथा अहंकार भी लीन होने लगे। तब वे घबरा कर चिल्ला उठे, 'महाशय, आप यह क्या कर रहे हैं! मेरे माता-पिता जो हैं! वस्तुतः श्रीरामकृष्ण उन्हें उनके वास्तविक स्वरूप का प्रत्यक्ष अनुभव करवाना चाहते थे। लेकिन उनका देह-बोध तथा "मैं अमुक का पुत्र हूँ" अपने स्वरूप के सम्बन्ध में यह धारणा इतनी प्रबल थी कि वे न तो श्रीरामकृष्ण के कथन को ही स्वीकार कर सके और न ही उनके स्पर्श द्वारा प्रदत्त प्रत्यक्ष अनुभूति को ही सहन कर सके। श्रीरामकृष्ण ने मुस्कुराते हुए उन्हें पुनः स्पर्श कर दिया जिससे वे प्रकृतिस्थ हो गये। इसके बाद श्रीरामकृष्ण ने उनको देवत्व की शिक्षा देने की तीसरी पद्धति अपनायी। अपने व्यवहार से इस बात को स्वामी जी के मन में बिठाया। वे कभी कभी स्वामीजी को उनकी व्यक्तिगत सेवा नहीं करने देते थे तथा सदा इसी प्रकार का व्यवहार करते थे, मानो वे किसी दैवी महा-पुरुष के साथ व्यवहार कर रहे हों।

श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द के बीच घटी घटनाओं एवं उनके सम्बन्धों का उपयुक्त वर्णन आत्मा के देवत्व को समझने की कठिनाई के साथ ही उसके उपदेश के विभिन्न उपयोगों का दिग्दर्शन करता है। श्रीरामकृष्ण जैसे उत्तम गुरु जो आत्म तत्व का प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत कर सकें, बिरले होते हैं। अधिकांश मनुष्य के लिए इस तत्व का पुनः-पुनः श्रवण, निदिध्यासन ही एकमात्र उपाय है। हमें प्रतिदिन सुबह-शाम, सब समय यह सोचना चाहिए कि हम देह-मांस के लोथड़े मात्र नहीं हैं; बल्कि अजर अमर नित्य शुद्ध बुद्ध एवं ज्ञान स्वरूप आत्मा हैं।

हमारी वर्तमान आवश्यकता—

मानव के देवत्व का उपदेश आज हमारी सबसे बड़ी आवश्यकता बन गयी है। स्वामी विवेकानन्द चाहते थे कि उसका उपदेश आबाल वृद्ध स्त्री-पुरुष, धनी-निर्धन सभी को दिया जाय। इसका परिणाम यह होगा कि एक किसान एक अच्छा किसान होगा, एक विद्यार्थी अच्छा विद्यार्थी होगा तथा एक शिक्षक श्रेष्ठतर शिक्षक बनने का प्रयत्न करेगा।

राष्ट्रीय स्तर पर भी मानव के दिव्य स्वरुप के सिद्धांत को स्वीकार करना महत्वपूर्ण है। ऐसा करने पर हम जनता के लिए भोग-सामग्री जुटाने तथा उनकी आर्थिक अवस्था की उन्नति मात्र के लिए प्रयत्नशील न होकर एक ऐसे समाज के गठन में तत्पर होंगे जहाँ नैतिक आदर्शों का पालन हो सके; जहां प्रत्येक मानव अपने स्वधर्म का पालन कर सकें तथा जिस समाज में प्रत्येक मानव को अन्तर्निहित देवत्व की अभिव्यक्ति का समुचित असर प्राप्त हो। आर्थिक समृद्धि उस उच्चतम लक्ष्य की उपलब्धि का एक सोपान मात्र हो, चरम लक्ष्य नहीं।

ईश्वर और जीव

श्री ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह
रीवा (मध्य प्रदेश)

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया"—एक वृक्ष पर बैठे हुए हैं दो पक्षी। चोटी पर बैठा हुआ पक्षी प्रशान्त गम्भीर एवं महिमान्वित है। नीची शाखा पर बैठा हुआ पक्षी अस्थिर अशान्त। वृक्ष में दोनों तरह के फल हैं—मीठे भी खट्टे भी। ऊँची डाल पर बैठा हुआ पक्षी इससे असंपृक्त है। वह देखता है—फलों का लगना, झड़ना, साथी पक्षी की उछल-कूद। दूसरा पक्षी कभी मीठे फल खाता है, आनन्दित होता है, कभी खट्टे फल खाता है, दुःखित होता है। अपनी इसी द्वैत मनःस्थिति में वह अशान्त है। एक डाली से दूसरी डाली में उछलता, कूदता है। ऊब जाता है वह कभी मीठे फल की मिठास से, कभी खट्टे फल की कडुआहट से। सुख की खोज में वह परिवर्तन चाहता है। लेकिन परिवर्तन की चाह उसके मन को और चंचल बनाती जाती है। अस्थिर मन स्थिर सुख खोज नहीं पाता। थक कर विवश हो ऊँची डाल पर बैठे हुए पक्षी की ओर निगाह डालता है। कुछ समीप भी जाने का प्रयास करता है। कुछ शान्ति मिलती है लेकिन पुराना अभ्यास फिर से खींच लाता है नीचे की ओर। खट्टे-मीठे फल के स्वाद की ओर। आरोहण-अवरोहण की इस प्रक्रिया की पुनः-पुनः आवृत्ति होती है। पूर्व अभ्यास के बन्धन कुछ-कुछ शिथिल होते चलते हैं। दूसरे साथी के पास पहुँचने की लालसा बढ़ती जाती है। एक दिन अपने पुराने साथी के पास वह पहुँच ही जाता है। पुराना साथी—जिससे बहुत दिन से साथ छूट चुका था केवल दूर की निगाहों का सम्बन्ध था—अस्पष्ट धूमिल। समीप पहुँच कर देखता है कि उसका पुराना साथी उससे भिन्न न था। खट्टे-मीठे फलों के भोग की द्वैत वृत्ति ने उसे एक नया रूप दे डाला था—चंचल, अस्थिर, अशान्त।

ईश्वर और जीव का यही पुरातन सम्बन्ध है। उस अनिर्वच सत्ता में कभी स्फुरण हुआ था—एकोऽहं बहुस्यामि—तथा यह जीवन का प्रवाह फूट पड़ा द्वैत के दो किनारों के बीच। यह प्रवाह मूल सत्ता से विलगाव नहीं बल्कि विधारूप में उसकी ही अभिव्यक्ति है।

चित्रकार चित्र बनाता है। उसकी बुद्धि में छिपी हुई कला हाथों में उभरती है। कागज, रंग, तूलिका का संयोग पाकर चित्र रूप में सामने आती है। स्थूल दृष्टि में वह चित्रकार अपनी कला तथा कला-कृति का नियामक-सा दिखता है। वह चाहे तो अपनी कला का विकास करे, चाहे तो ह्रास। यद्यपि इसमें भी एक सीमा है जिसके आगे वह नहीं जा पाता। लेकिन सूक्ष्म दृष्टि में स्थिति भिन्न है। वह पूर्ण परतंत्र है अपनी अंतर्वृत्तियों में तथा उन्हें प्रकाशित करने वाले परम प्रकाश में। हम कल्पना करें उस स्थिति की जब वह कलाकार अपनी चिर निद्रा में सो जाता है। शरीर के अंग-प्रत्यंग वही, वही कागज, वही रंग, वही तूलिका। लेकिन सभी बिखरे पड़े हैं, कहाँ गया कलाकार ? कहाँ गयी कलाकार की कला ? यदि स्थूल रूप ही कला कृति का नियामक था तो आज सभी निस्पंद क्यों ? कार्यकारण की समीक्षा करने वाला विज्ञान यहाँ मौन है। जगत् का यही सत्य है।

ईश्वर में जगत् के संकल्प को प्रवृत्ति या माया कहा गया। मानसकार ने गाया—जो सृजति, जग पालति, हरति रुख पाइ कृपा निधान की। इसे नारी रूप दिया गया। मानवीकरण भारतीय संस्कृति की पुरानी परम्परा है। माया के खेल से अपरिचय-सा. फिर भी उसी में खेलने वाला ईश्वर ही जीव है। अपरिचित ही भव-बन्धन का कारण है। हम मृत्यु से डरते हैं क्योंकि उससे अपरिचित

हैं। हम कभी दुःख नहीं चाहते क्योंकि हम नहीं जानते कि प्रिय, अप्रिय संवेदन हमारे ही मन की मान्यता है। इसी द्वैत वृत्ति में हम अशान्त हैं। अपने विकास के लिए हम जगत् व जीवन से परिचय पावें। यदि हम लकड़ी के एक छोटे टुकड़े, मिट्टी के एक छोटे लोहे से तत्वतः परिचय प्राप्त कर लें तो काष्ठ के अम्बार, मिट्टी के पहाड़ से परिचित होने में हमें कठिनाई न होगी वे चाहे अपना जितना रूप वदलें। जगत् व जीवन से परिचय पाने के लिए हम स्वयं से परिचित हों, तब जगत्-जन्म, मृत्यु, सुख-दुःख, एक समस्या के रूप में हमारे सामने नहीं आयेंगे।

जगत् के इस द्वैत प्रवाह को कब कौन समाप्त कर पाया है ? समाप्त करने के असफल प्रयास ने ही सम्प्रदाय की संकीर्ण गलियाँ बनायीं। धरती, आसमान, चाँद, सूर्य, सितारे, रात-दिन सभी सन्तुलन की एक गति में चल रहे हैं। स्थूल ही नहीं, सूक्ष्म की भी यही स्थिति है। विराट् दृष्टि में सन्तुलन हमेशा कायम रहा। देश काल के कल्पित विभाजन में यह सन्तुलन बिगड़ते हुए भी दिखा लेकिन वह समाज का अधिक समुन्नत रूप लेकर आया। इसी सन्तुलन को कायम रखने के लिए अवतार आये, पैगम्बर आये, ईसा मसीह ने कहा—अपनी रोटी समुद्र में फेंक दो। वह कई गुना बढ़कर तुम्हारे पास आयेगी···। प्रतिशोध लेना तुम्हारा काम नहीं, उसे तुम मेरे ऊपर छोड़ दो। वैदिक ऋषि की वाणी आज भी उसी ऊँची आवाज में पुकार रही है—छोटे कीट से विराट् ब्रह्म तक—सभी का मंगल हो···यह सारा जगत् उस ब्रह्म का विराट् स्वरूप है उसके प्रति श्रद्धावनत हो। स्वार्थ की संकीर्णता से निकालने का वह सन्देश था जहाँ मानव अपने देव रूप को पहचान सके।

जीवन के इस रहस्य को हम समझें तभी हम ऊँच नीच, पापी, पुण्यात्मा की कुण्ठाओं से ऊपर उठ पायेंगे तथा वहाँ हम सुन पायेंगे वैदिक ऋषि की वाणी जो हमें पुकार रही है—अन्धकार से प्रकाश की ओर, असत से सत की ओर, मृत्यु से अमरत्व की ओर चलो।

—

स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) की जीवन-कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय

अनुवादक—ब्रह्मचारी प्रज्ञाचैतन्य

रामकृष्ण मठ नागपुर

४. दक्षिणेश्वर में परमहंसदेव का प्रथम दर्शन

[लालटू के साथ परमहंसदेव का प्रथम मिलन, बालक का रुदन और रामचन्द्र दत्त की प्रार्थना, दक्षिणेश्वर जाने में लालटू का आनन्द, घरेलू कामकाज के प्रति उसका मनोभाव, ठाकुर का दर्शन न मिलने पर लालटू की मानसिक अवस्था।]

हम पहले ही कह आये हैं कि रामबाबू के घर में लालटू की मानसिक साधना प्रारम्भ हो गयी थी। मानस-साधना में अद्भुत् शक्ति निहित है; उसके द्वारा साधक अपने भीतर स्पृहा का तीव्र वेग उत्पन्न कर सकता है। श्रीरामकृष्ण की सहज सरल व भावव्यंजक कथाएँ सुनकर लालटू के मन में उनके प्रति भक्ति व श्रद्धा का उदय हो रहा था तथा उन्हें देखने की उत्कण्ठा जाग रही थी। उत्कण्ठा से अनेक प्रश्नों का उदय होता है। उन्हीं प्रश्नों ने उनके मन को चंचल कर डाला—"तो फिर ये परमहंस हैं कौन? इतनी मधुर जिनकी बातें हैं, वे साधु रहते कहाँ हैं? दक्षिणेश्वर—वह जगह कितनी दूर है? मालिक को कहने पर क्या वे मुझे एकदिन वहाँ ले न जायेंगे?" इस प्रकार के अनेक प्रश्नों के द्वारा उत्कण्ठित होकर लालटू साहस जुटाकर एक रविवार को मालिक रामबाबू से कह बैठा—"आप आज वहाँ जायेंगे, मुझे ले चलिए। मैं आपलोगों के परमहंस को देखूँगा। क्या आप उन्हें दिखायेंगे?" लालटू का यह स्नेहपूर्ण हठ मालिक रामचन्द्र को अनुचित न लगा और उसी रविवार को उसे साथ लेकर वे दक्षिणेश्वर गये।

यहाँ पर यह बता देना उचित होगा कि लालटू के साथ ठाकुर के प्रथम साक्षात् के बारे में कई विवरण मिलते हैं। ढाका के सुबोधबाबू ने श्रीरामकृष्ण-जीवनी में लिखा है कि १८८०-८१ ई० में लालटू के साथ ठाकुर की प्रथम बार भेंट हुई। परन्तु हमें विश्वस्त सूत्रों से पता चला है कि १८८० ई० के पूर्व ही दोनों का मिलन हो चुका था। हमें श्रीयुत् रामचन्द्र दत्त की मंझली कन्या से जो विवरण मिला है, उसके आधार पर हम निःसन्देह कह सकते हैं कि जिस वर्ष रामबाबू को परमहंसदेव से मन्त्रदीक्षा मिली थी, उसी वर्ष लालटू के साथ ठाकुर का साक्षात्कार हुआ था। भक्त रामचन्द्र दत्त १८७९ ई० में परमहंसदेव की कृपा पाने में समर्थ हुए थे। फ्रांसीसी विद्वान् रोमाँ रोलाँ ने प्राच्य व पाश्चात्य भक्तों की सहायता से श्रीरामकृष्ण देव की जो जीवनी प्रकाशित की हैं; उसमें १८७९ ई० में दीक्षित सिर्फ चार भक्तों में उन्होंने रामबाबू और लालटू दोनों का ही नाम दिया है। मायावती से प्रकाशित हुए ग्रन्थ में लिखा है कि १८८० ई० के पूर्व ही ठाकुर के साथ लालटू का साक्षात् हुआ था। यद्यपि इतने प्रामाणिक ग्रन्थों में १८८० ई० के पूर्व ही दोनों के मिलन की बात लिपि-

बद्ध है, तथापि अनेक लोग इस विषय में सन्देहमुक्त न हो सके हैं। वैकुण्ठनाथ सान्याल महाशय ने भी अपने ग्रन्थ में सुबोधबाबू का ही समर्थन किया है तथा श्री-दुर्गापद मित्र (जो बंगला 'मासिक वसुमती' में श्रीराम-कृष्ण-जीवनी धारावाहिक रूप में लिख रहे हैं) ने भी इस परवर्ती मत को ही स्वीकार किया है।

ईसवी सन् आदि लेकर विशेष ऐतिहासिक शोध करना बन्द कर अब हम अपने विश्वास के अनुसार १८७९ ई० को ही प्रथम मिलन का काल मान लेते हैं और तदनुसार हमें जो प्रमाण मिले हैं उनमें से कुछ हम पहले ही उद्धृत कर चुके हैं और बाकी यथास्थान देने का प्रयास करेंगे।

ईसवी सन् के पश्चात् अब हम एक अन्य सन्देह का निवारण कर लेना चाहते हैं। किसी-किसी का, जिनमें सुबोधबाबू, वैकुण्ठबाबू और दुर्गापदबाबू प्रमुख हैं, कहना है कि श्रीरामकृष्ण के साथ प्रथम साक्षात् के समय लालटू के साथ और कोई भी न था। प्रथम साक्षात्कार का विवरण हमने दो लोगों से संग्रह किया है। ठाकुर के भतीजे श्रीरामलाल चट्टोपाध्याय से हमने जो कुछ सुना है, पहले उसी को आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं—

"एकदिन मैंने देखा कि रामबाबू अपने साथ एक छोकरे नौकर को लाये हैं। लड़का गोलगाल, कद का थोड़ा छोटा, जवान-जैसा लगा। तब मैं उसका नाम न जानता था। यह जो पश्चिम की ओर का बरामदा देख रहे हो, छोकरा वहीं खड़ा था, उस समय रामबाबू ठाकुर की खोज में कमरे के भीतर गये थे। पर ठाकुर तब बाहर ही थे। वे राधिका का कीर्तन गाते हुए आ पहुँचे—'तव मैं द्वार पर खड़ी' वे इस पर पंक्तियाँ जोड़ रहे थे 'बातें कह न सकी', 'वधू के साथ मेरी बातें न हुईं', साथ में बलदाऊ थे, सो बातें न हो सकीं' इत्यादि। बरामदे में ठाकुर के साथ लालटू की मुलाकात हुई, उसी समय रामबाबू भी कमरे से बाहर निकले। ठाकुर ने रामबाबू से पूछा—'इस लड़के को लगता है तुम साथ लाये हो? राम! यह कहाँ मिला? इसमें तो साधु के लक्षण देख रहा हूँ।' ये बातें करते हुए रामबाबू तथा परमहंसदेव ने कमरे के भीतर प्रवेश किया। लालटू तब भी वहीं खड़ा रहा; मैंने कहा जाओ न भीतर। मेरी बात सुनकर बालक सोचने लगा कि कमरे के अन्दर जाऊँ या नहीं! ठाकुर ने उसे कमरे में बुला लिया, परन्तु मैं भीतर नहीं गया।"

कमरे के भीतर क्या बातें हुई थीं, यह जानने का सौभाग्य हमें मिला था स्वयं रामबाबू से ही। ठाकुर की अलौकिक शक्ति के बारे में बोलते-बोलते उन्होंने लालटू का प्रसंग उठाकर जो कुछ कहा था, अब हम आपको वही बतायेंगे :—

"मुझे एक वेशभूषारहित साधु के चरणों में प्रणाम करते देखकर लेटो ने क्या सोचा यह तो पता नहीं। पर देखा कि मेरे बाद ही उसने भी ठाकुर के चरण धर कर प्रणाम करना प्रारम्भ कर दिया है। जब ठाकुर ने मेरे साथ विविध विषयों पर वार्तालाप शुरू कर दी, उस समय देखा कि लेटो चुपचाप हाथ जोड़कर उनके सामने खड़ा-खड़ा हमारी बातें सुन रहा है। और ठाकुर बीच-बीच में उसकी ओर देखकर हँसते हुए कह रहे हैं—'बैठ जा न रे, बैठ'। इस बीच हमारी बातचीत में सिद्ध और नित्यसिद्ध का प्रसंग आ गया। ठाकुर बोले—'जो लोग नित्यसिद्ध हैं, उनमें ज्ञानचैतन्य हुआ ही पड़ा है। मानो वे पत्थर से ढँके फव्वारे हैं। मिस्त्री इधर-उधर खोदते-खादते ज्यों ही एक जगह का अवरोध हटा देता है, त्यों ही फव्वारे से कल-कल कर जल की धार निकलने लगती है।' ये कुछ बातें कहने के पश्चात् ठाकुर ने सहसा लालटू को स्पर्श किया। ठाकुर के स्पर्श से लेटो के भाव में मानो उफान-सा आ गया। उसका होशो हवास सब चला गया—लगा मानो वह किसी अज्ञात राज्य में पहुँच गया हो। अचानक उसके रोम खड़े हो गये, कण्ठस्वर गद्गद हो उठा, आँसुओं की धार बहने लगी और उसके दोनों होठ जोर-जोर से काँपने लगे! ठाकुर के स्पर्श से लेटो की ऐसी भावविह्वल

अवस्था देखकर मुझे बड़ा अचरज हुआ। लेटो काफी समय तक रोता रहा। एक घण्टे से अधिक हो गया तो भी उसका रुदन थमा नहीं। अन्त में बाध्य होकर मैंने ठाकुर से अनुरोध किया—'सो तो समझा। अब यह लड़का क्या सारे समय रोता ही रहेगा?' बातों-बातों में ठाकुर ने पुनः लालटू को छू दिया। देखते-ही-देखते लालटू का कम्पन कम हो गया। तो भी तुमलोग ठाकुर की अलौकिकता में विश्वास नहीं करते! तो भी तुम-लोग न मानना चाहोगे कि ठाकुर अवतार थे!"

यहीं पर हम रामबाबू का प्रसंग समाप्त कर उसके बाद की घटनाओं का वर्णन करेंगे। बालक का उच्छ्वास शान्त होने पर ठाकुर ने रामलाल को थोड़ा प्रसाद लाने को कहा। लालटू के प्रसाद खाकर थोड़ा स्वा-भाविक होने पर ठाकुर ने उसे मन्दिर की ओर जाने का आदेश दिया।

दिव्यदृष्टि से सम्पन्न ठाकुर ने पहली नजर में ही छपरा जिले के इस निरक्षर बिहारी भृत्य को शुद्ध व पवित्र देख लिया था और यह भी समझ लिया था कि एकदिन यही बालक साधना के द्वारा अध्यात्म-जगत् की खोज करेगा। इसीलिए उस दिन रामबाबू जब बालक को लेकर कलकत्ते लौटने को प्रस्तुत हुए थे, तो उन्होंने भक्त रामदत्त को स्नेहपूर्वक कहा था—"अरे, उसे बीच-बीच में यहाँ भेजते रहना।" और लालटू से कहा—"अरे! आना, बीच-बीच में यहाँ आते रहना। समझे!"

दक्षिणेश्वर से लौटने के बाद लालटू एक तरह से अनमना सा हो गया। किसी भी चीज के प्रति उसका विशेष आकर्षण न रहा, किसी भी वस्तु से उसे तृप्ति न मिलती थी, परन्तु वह सारी झंझटों से दूर भी न हो सका। यह जो सबकुछ के प्रति अतृप्ति की वेदना है, यह कितना अशान्तिकर है, कितने अधिक निरानन्द की अवस्था है, यह भुक्तभोगी को छोड़ दूसरा कोई भी नहीं समझ सकता। उन दिनों के लालटू को जिसने देखा था, उनके मुख से सुना है—"लालटू मानो चाभी भरी हुई मशीन था—प्राणहीन यन्त्र के समान। जैसे कंकड़ों-पत्थरों के ऊपर से होकर जलस्रोत बहा चला जाता है वैसे ही मानों उनकी जड़ देह व मन के ऊपर से होकर दैनन्दिन कर्मों का स्रोत चला जा रहा था। जैसे स्रोत के मुख के पास के कंकड़ लुढ़कते हैं, वैसे ही लालटू का शरीर मन इधर-उधर चलना-फिरना करता, परन्तु उसमें चित्त का योग न रहता था।'' दक्षिणेश्वर जाने के पूर्व जो बालक अपनी वाणी से रामचन्द्र के गृह को सदा मुखरित रखा करता था, अचानक उसी बालक के भीतर के कलरव का लोप हो जाने से मकान निस्तब्धता में सोया रहता था। ठाकुर से साक्षात् होने के पूर्व जो बालक अदम्य उत्साह के साथ घर के सारे कार्य पूरा कर अपने आंचलिक लोगों के साथ जी भर कर गप्पें लगाया करता था—उसी बालक को अचानक निरुत्साह के आक्रमण ने मानो जर्जरित कर डाला था। घर के सभी लोगों ने लालटू में इस परिवर्तन को लक्ष्य किया था। इसी प्रकार सप्ताह-पर-सप्ताह बीते। पता नहीं और भी कितने दिन इसी प्रकार बीत जाते, पर अचानक दक्षिणेश्वर जाने की बात सुनकर लालटू का आग्रह व्यक्त हो उठा। उसी लालटू के मुख से निकल पड़ा—"मुझको दीजिए, मैं आपका सबकुछ वहाँ ले जाऊँगा। मैं सब ठीक से पहचान लूँगा।" इसी दिन लालटू अकेला दक्षिणेश्वर को गया था। १८९० ई० के फरवरी का महीना और वसन्त ऋतु के दिन थे। उसने अकेले ही छः मील का लम्बा रास्ता तय किया था। रास्ते में विभिन्न लोगों से पूछते हुए बालक मालिक के द्वारा भेजे हुए फल व मिठाई लेकर लगभग ग्यारह बजे दक्षिणेश्वर पहुँचा। दूर से ही मन्दिर का उच्च शिखर देखकर तथा संगीत का सुमधुर आलाप सुनकर बालक अत्यन्त पुलकित हो उठा था। विविध पुष्प-लताओं से शोभित अपूर्व उद्यानपथ से जाते हुए बालक मुग्ध-सा हो गया था। सहसा उसी उद्यानपथ में श्रीरामकृष्ण को दण्डायमान देखकर बालक अपने आपको न संभाल सका। तेजी से दौड़कर वह ठाकुर के निकट जा पहुँचा और

भक्तिपूर्वक प्रणाम निवेदित किया। दीर्घ प्रणाम पूरा हो जाने के बाद दोनों विविध प्रकार की बातें करते हुए मन्दिर की ओर गये।

मन्दिर में माँ की आरती देखकर बालक के नेत्र सजल हो उठे थे। विष्णु मन्दिर की आरती देखकर तो उसे इतना आनन्द हुआ था कि उसने वहाँ "जय राम जय राम" की ध्वनि से मन्दिर को गुंजरित कर दिया था।[1]

1. ये बातें मैंने रामलाल दादा के मुख से सुनी हैं।

समाचार और सूचनाएँ

राष्ट्रीय युवा दिवस समारोह

राँची, १२ जनवरी : स्थानीय रामकृष्ण मिशन आश्रम के तत्वावधान में स्वामी विवेकानन्द के जन्म-दिवस के अवसर पर आश्रम के 'दिव्यायन' के विशाल हॉल में राष्ट्रीय युवा-दिवस समारोह आज सोल्लास मनाया गया।

समारोह का उद्घाटन करते हुए राँची विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ० सच्चिदानन्द ने कहा कि आज के दिग्भ्रमित युवकों को विनाशकारी प्रवृत्तियों से विरत करने के लिए युवाशक्ति को सही दिशा में प्रेरित करने की परम आवश्यकता है और इसके लिए स्वामी विवेकानन्द द्वारा निर्देशित विचारों के व्यापक प्रचार-प्रसार की जरूरत है।

इस अवसर पर 'स्वामी विवेकानन्द एवं भारतीय युवा' विषय पर मुख्य वक्ता के रूप में बोलते हुए 'विवेक शिखा' के सम्पादक एवं राजेन्द्र कॉलेज, छपरा के स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग के रीडर डॉ० केदारनाथ लाभ ने स्वामी विवेकानन्द के जीवन एवं उपदेशों की विस्तार से चर्चा की तथा कहा कि हमने एक लड़ाई लड़कर राजनीतिक स्वतंत्रता तो प्राप्त कर ली लेकिन सच्ची स्वाधीनता के लिए दूसरी लड़ाई अभी बाकी है जो स्वामी विवेकानन्द के आदर्शों का अवलम्बन लिए बिना संभव नहीं। उन्होंने युवकों का, स्वामीजी के उपदेशों को अपने जीवन में उतारकर शिवभाव से प्राणिमात्र की सेवा में संलग्न होकर भारत के नव-निर्माण के प्रति समर्पित होने के लिए आह्वान किया।

राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, पूसा के भूतपूर्व कुलपति प्रोफेसर एस० सी० मंडल ने अपने अध्यक्षीय भाषण में युवापीढ़ी की समस्याओं पर चिन्तन-मनन करते समय ग्रामीण युवकों की समस्याओं पर विशेष रूप से विचार-विमर्श किये जाने की जरूरत पर बल दिया। उन्होंने विश्वास व्यक्त किया कि स्वामी विवेकानन्द के उपदेशों से युवा शक्ति को सही रास्ता मिलेगा।

आरंभ में स्थानीय रामकृष्ण मिशन के सचिव स्वामी तत्वबोधानन्दजी ने आगतजनों का स्वागत किया। तथा श्री एस० एन० गांगुली ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

इस अवसर पर ८ युवा प्रतिनिधियों ने भी अपने विचार व्यक्त किये जिनमें कुमारी एस० अंजली, सिद्धार्थ गांगुली, पावेल पुरकैत, कुमारी चैताली मुखर्जी, कुमारी अनुराधा शुक्ला, कुमारी गार्गी कर्मकार, विश्वरूप गोस्वामी आदि प्रमुख थे।

झुमरी तिलैया, १४ जनवरी : स्थानीय विवेका-

नन्द ज्ञान मंदिर के तत्वावधान में त्रिदिवसीय राष्ट्रीय युवा दिवस समारोह का आयोजन किया गया। इस अवसर पर विभिन्न क्रीड़ाओं, नाटकों आदि का सफल आयोजन हुआ। १४ जनवरी को स्थानीय शिक्षा विभाग के एस० डी० ओ० की अध्यक्षता में जन-सभा हुई जिसमें मुख्य वक्ता के रूप में डॉ० केदारनाथ लाभ ने स्वामी विवेकानन्द के जीवन और संदेशों पर विशद प्रकाश डाला और कहा कि भारत के पुनर्निर्माण के लिए स्वामीजी के संदेशों को अमल में लाने की नितांत आवश्यकता है। इस अवसर पर रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची के स्वामी निखिलेश्वरानन्दजी महाराज ने विजेताओं के बीच पुरस्कार-वितरण किये। उन्होंने अपने भाषण में कहा कि देश के गरीबों के उद्धार के बिना नये भारत का निर्माण नहीं हो सकता। अतः हम सब का पुनीत कर्तव्य है कि स्वामी विवेकानन्द के आदर्शों के अनुसार भारत के नव-निर्माण में हम सब लग जावें। श्री विजयकुमार सिंह, श्री दीनानाथ मिश्र आदि ने इस आयोजन में महत्वपूर्ण योगदान किया।

रामकृष्ण मिशन, नयी दिल्ली में विवेकानन्द जयन्ती

रामकृष्ण मिशन, नयी दिल्ली के सचिव स्वामी स्वानन्दजी महाराज ने सूचित किया है कि स्वामी विवेकानन्द की १२४वीं जन्म-तिथि पूजा १ फरवरी को मनायी जायगी। ९ फरवरी को मिशन के ऑडिटोरियम में वार्षिकोत्सव मनाया जायगा जिसमें स्वामी विवेकानन्द का जीवन और संदेश' विषय पर श्री आलोक मित्र (अंग्रेजी में) तथा श्री के० के० चोपड़ा (हिन्दी में) व्याख्यान देंगे। स्वामी स्वानन्दजी महाराज अध्यक्षता करेंगे और मानव संसाधन विकास मंत्रालय, शिक्षा विभाग के विशेष सचिव श्री किरीत जोशी मुख्य अतिथि होंगे। १० फरवरी को हिन्दी और ११ फरवरी को अंग्रेजी में कॉलेज के छात्रों की भाषण प्रतियोगिता 'स्वामी विवेकानन्द के सपनों का भारत' विषय पर आयोजित की गयी है। १६ फरवरी को मिशन के प्राङ्गण में श्री एच० एल० कपूर, लेफ्टिनेन्ट गवर्नर, दिल्ली की अध्यक्षता में विद्यार्थी दिवस जनसभा और पुरस्कार वितरण होंगे। 'स्वामी विवेकानन्द के संदेश' विषय पर स्कूल और कॉलेज के छात्रों के भाषण और पाठ होंगे।

रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद का वार्षिक समारोह

रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद के अध्यक्ष स्वामी हर्षानन्दजी महाराज ने सूचित किया है कि भगवान श्रीरामकृष्ण की १५१वीं जयन्ती तथा श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा और स्वामी विवेकानन्द के जन्म-दिनों का उत्सव १२ मार्च से १७ मार्च १९८६ तक मनाया जायगा।

१२ मार्च को भगवान श्रीरामकृष्ण की तिथि पूजा होगी। १३ मार्च को भरत-मिलाप फिल्म का प्रदर्शन होगा। १४ मार्च को श्री माँ सारदा देवी का जन्मोत्सव रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी के स्वामी ब्रह्मेशानन्दजी महाराज की अध्यक्षता में मनाया जायगा। डॉ० (कुमारी) राज्यलक्ष्मी वर्मा (इलाहाबाद विश्वविद्यालय) और डॉ० केदारनाथ लाभ (संपादक, विवेकशिखा) वक्ता होंगे।

१५ मार्च को स्वामी विवेकानन्द का जन्म-समारोह रामकृष्ण मिशन, रायपुर के स्वामी निखिलात्मानन्दजी महाराज की अध्यक्षता में सम्पन्न होगा। वक्ता होंगे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर मनोविज्ञान विभाग के आचार्य एवं अध्यक्ष डॉ० आर० के० नायडू तथा स्वामी ब्रह्मेशानन्दजी महाराज।

१६ मार्च को भगवान श्रीरामकृष्ण का अवतरण-समारोह स्वामी निखिलात्मानन्दजी महाराज की

अध्यक्षता में आयोजित होगा। वक्ता होंगे इलाहाबाद उच्च न्यायालय के एडवोकेट श्री पालोक बसु और डॉ केदारनाथ लाभ। १७ मार्च को भगवान श्रीरामकृष्ण नामक बंगला फिल्म प्रदर्शित होगी तथा २३ मार्च को दरिद्रनारायण का भोज होगा।

विचार गोष्ठी : रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा

इलाहाबाद विश्वविद्यालय तथा रामकृष्ण मिशन, इलाहाबाद के तत्वाधान में ८ और ९ मार्च, १९८६ को 'रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा और भारतीय पुनर्जागरण का व्यापक अध्ययन' विषय पर रामकृष्ण मिशन, इलाहाबाद के प्रेक्षागृह में विचार गोष्ठियों का आयोजन किया गया है। ८ मार्च के उद्घाटन की अध्यक्षता करेंगे न्यायमूर्ति एच० एन० सेठ (मुख्य न्यायधीश, इलाहाबाद उच्च न्यायालय) न्यायमूर्ति ए० एन० रे (भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश) मुख्य अतिथि होंगे। विचार गोष्ठी के उद्देश्यों पर डॉ० निमाई साधन बसु प्रकाश डालेंगे। प्रथम सत्र का विषय है—'भारतीय पुर्नगरण के पारम्परिक स्रोत'। अध्यक्ष होंगे—प्रो०जन ए०बी० लाल। मुख्य वक्ता—प्रो० जी० सी० पाण्डे (पूर्व कुलपति राजस्थान एवं इलाहाबाद विश्वविद्यालय) विचारक—प्रो० ए० डी० पन्त, डॉ० सुभाष बनर्जी तथा प्रो० संगम लाल पाण्डे। ९ मार्च के प्रथम सत्र का विषय है—'भारतीय पुनर्जागरण और श्रीरामकृष्ण'। अध्यक्ष— प्रो० ए० डी० पन्त। मुख्य वक्ता— डॉ० निमाई साधन बसु (कुलपति, विश्व भारती, शान्ति निकेतन)। वक्ता— प्रो० जी० सी० पाण्डे और डॉ० अरुण कुमार विश्वास। द्वितीय सत्र का विषय है—स्वामी विवेकानन्द के धार्मिक और दार्शनिक विचार। अध्यक्ष—न्यायमूर्ति ए०एन० रे। मुख्य वक्ता—डॉ० एम० लक्ष्मी कुमारी (अध्यक्ष, विवेकानन्द केन्द्र, कन्या कुमारी) वक्ता—प्रो० एस० एन० महाजन, डॉ० चन्दन राय चौधरी तथा प्रो० मानस मुकुल दास। तृतीय सत्र का विषय—स्वामी विवेकानन्द और भारत का स्वाधीनता आन्दोलन। अध्यक्ष—प्रो०टी० पति। मुख्य वक्ता—डॉ शंकरी प्रसाद बसु। वक्ता—डॉ अरुण सिन्हा डॉ० सी०वी० त्रिपाठी। विदाई सत्र के अध्यक्ष—डॉ आर० पी० मिश्र (कुलपति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय)। मुख्य अतिथि—न्यायमूर्ति एम० एन० शुक्ला। गोष्ठी का सिंहावलोकन—डॉ० निमाई साधन बसु। धन्यवाद—स्वामी हर्षानन्द।

श्रीरामकृष्ण जयंती, पटना

श्रीरामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना में आगामी १२ मार्च, १९८६, बुधवार से पूरे एक सप्ताह भर भगवान श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव का शुभ जन्मोत्सव निम्नलिखित कार्यक्रम के अनुसार मनाया जायगा—यह सूचना आश्रम के सचिव स्वामी वेदान्तानन्दजी महाराज ने दी है।

बुधवार, १२ मार्च १९८६ प्रात: ५-०० वजे—मंगल आरती, वेदपाठ : दिन ९-०० वजे से ११-३० वजे तक, भजन एवं श्रीरामकृष्ण कथा : दिन ११-३० वजे से पुष्पांजलि, भोग-निवेदन एवं होम : दिन १२-३० वजे—प्रसाद-वितरण (हाथों-हाथों में) संध्या ६-०० वजे—आरती : ६-३० वजे—रामायण गायन, गायक—श्रीसुधीर कुमार चौधरी 'गीतरत्न'। बृहस्पतिवार, (१३ मार्च १९८६) ६-३० वजे—रामायण गायन (श्री सुधीर कुमार चौधरी)। शुक्रवार, (१४ मार्च १९८६) संगीत : परिवेशक "झंकार", गोविन्द मित्र रोड, पटना। शनिवार, (१५ मार्च १९८६) संध्या ६-३० बजे—विद्यार्थी दिवस एवं पुरस्कार वितरण सभापति : श्री दुर्गाशंकर मुखोपाध्याय (आइ०ए०एस०) वक्ता : स्वामी स्मरनानन्द सचिव, रामकृष्ण मिशन सारदापीठ, बेलुड़ मठ। रविवार, (१६ मार्च १९८६) संध्या ६-३० बजे—जनसभा विषय : श्रीरामकृष्ण वाणी : सभापती : स्वामी : स्मरनानन्द वक्ता : दुर्गाशंकर मुखोपाध्याय सोमवार, (१७ मार्च १९८६) चलचित्र—श्रीरामकृष्ण मंगलवार—१८ मार्च से सोमवार २४ मार्च १९८६ तक रामचरित मानस प्रवचन : वक्ता—स्वामी रामप्रेमानन्द सरस्वती

रामकृष्ण मिशन, खेतड़ी

खेतड़ी, रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द स्मृति मंदिर के सचिव स्वामी पुण्यानन्दजी महाराज ने सूचित किया है कि आगामी १२ मार्च को श्रीरामकृष्णदेव की जयन्ती पूरे धूमधाम से मनायी जायगी। उक्त दिन मंगल आरती, पुष्पांजलि, प्रसाद वितरण और कीर्तन-भजन के साथ ही श्रीरामकृष्ण के जीवन पर प्रवचन का भी कार्यक्रम है।

रामकृष्ण मिशन सेवाआश्रम, लखनऊ

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, लखनऊ के सचिव स्वामी श्रीधरानन्दजी महाराज ने सूचित किया है कि आगामी १२ मार्च को आश्रम के प्राङ्गण में भगवान श्रीरामकृष्ण की जयंती सोल्लास मनायी जायगी। पूरे दिन भर का कार्यक्रम है। सायंकाल संध्यारती के पश्चात भगवान श्रीरामकृष्ण के जीवन और संदेशों पर महत्वपूर्ण व्याख्यान का भी आयोजन है।

श्रीरामकृष्ण मिशन विवेकानन्द सोसाइटी, जमशेदपुर

श्रीरामकृष्ण मिशन विवेकानन्द सोसाइटी, जमशेदपुर के सचिव स्वामी आदिनाथानन्दजी महाराज ने सूचित किया है कि श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव की १५१वीं पुण्य तिथि मिशन के प्राङ्गण में निम्नलिखित कार्यक्रम के अनुसार मनायी जायगी। १२ मार्च को मंगलारतिकम्, विशेष पूजा तथा हवन, भजन, प्रसाद वितरण, संध्यारती तथा भगवान श्रीरामकृष्णदेव के जीवन तथा उपदेश पर व्याख्यान होंगे। २६ मार्च को दरिद्र नारायण की सेवा की जायगी। २२ मार्च को रामकृष्ण माध्यमिक विद्यालय तथा विवेकानन्द मध्य विद्यालय, विष्टुपुर का पुरस्कार वितरण समारोह होगा। संध्या में चलचित्र प्रदर्शनी होगी। २३ मार्च को जन सम्मेलन होगा जिसकी अध्यक्षता श्रीरामकृष्ण मठ और मिशन, बेलुड़ मठ के मुख्य सचिव स्वामी हिरण्मयानन्दजी महाराज करेंगे। श्रीरामकृष्ण मठ और मिशन की परिचालक समिति के सदस्य स्वामी वन्दनानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी उमानन्दजी महाराज तथा रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, पुरुलिया के अध्यक्ष स्वामी उमानन्दजी महाराज क्रमशः अंग्रेजी, हिन्दी और बंगला में श्रीरामकृष्ण के जीवन और उपदेश विषय पर प्रवचन देंगे। ✱

जो कोई—पुरुष या स्त्री—श्री रामकृष्ण की उपासना करेगा वह चाहे कितना ही पतित क्यों न हो, तत्काल ही उच्चतम में परिणत हो जायेगा।.......
जो प्रेम से उनकी पूजा करेगा उसका सदा के लिए कल्याण हो जायेगा।

—स्वामी विवेकानन्द

भगवान ने बड़े-बड़े कार्य करने के लिए हमें निर्दिष्ट किया है और हम उन्हें करेंगे। उसके लिए तैयार रहो, अर्थात् पवित्र, विशुद्ध एवं निःस्वार्थ प्रेम-सम्पन्न बनो। दरिद्र, दुःखी और पददलित से प्रेम करो। प्रभु तुम्हारा कल्याण करेंगे।

—स्वामी विवेकानन्द